प्रकाशक
धन्यकुमार जैन
स्वत्वाधिकारी
हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
बड़ाबाजार : कलकत्ता - ७

मूल्य
स-जिल्द २।) सवा दो रुपया
अ-जिल्द २) दो रुपया

मुद्रक—निवारणचन्द्र दास, प्रवासी प्रेस
१२०।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता

रवीन्द्र-साहित्य

चौदहवाँ भाग

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार

पी-१५, कलाकार स्ट्रीट

बड़ाबाजार : कलकत्ता - ७

हिन्दी - हिन्दुस्थानीमें
विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है
आशा है
सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे
और
जितना अधिक और जितनी जल्दी
अपनायेंगे
उतना ही इसका अनुवाद और
प्रकाशन-कार्य सुन्दरता और
शीघ्रतासे आगे बढ़ता जायगा

यह ग्रन्थमाला
लगभग अस्सी भागोंमें पूरी होगी

—धन्यकुमार जैन

कणिका

[छन्द वसन्ततिलका]

समर्थकी क्षमा

आके कहा सुमुनि नारदने धरासे,
"निन्दा करें मनुज क्यों तव अन्न खाके ?
'मिट्टी' कहें, 'मलिन धूलि' कहें घृणासे,
ऐसे कृतघ्न जन ये ! गलती तुम्हारी,
क्यों अन्न देकर इन्हें रखतीं जिलाये ?
भूखे मरें तब कहीं समझें तुम्हें ये !"
बोली धरा, मुसकरा, करुणामयी - सी,
"कैसे, भला, मनुजसे समता करूँ मैं ?
निन्दा कभी न लगती ममतामयीको,
ये तो अभी मर मिटें, मुंह मोड़ लूं तो !"

ध्रुव सत्य

मैं हूं प्रकाश, अतिहीन 'दिआ' जरा-सा,
मौजूद हूँ, बस यही, कुछ भी नहीं हूं।
देखूं, अहो, पलकमें, मम ओटमें तो,
हे अन्धकार, तुम हो, बिन आदि-अन्त !

गुणज्ञ

मैं हूँ रँगीन तितली, उड़ती हवामें,
तो भी न देख सकते कवि काव्य-स्रष्टा !
बोलो भला, भँवर हे, यह बात क्या है,
ऐसे भरे सुगुन क्या तुममें, बताओ ?

भिक्षा और उपार्जन

"कार्पण्य क्यों, वसुमती, इतना बताओ,
खोदें जमीं, तब कहीं हम अन्न पायें ?
देना तुम्हें अगर है, खुश हो हमें दो,
क्यों कष्ट देकर हमें इतना सतातीं ?
जोते बिना हल, मिले, क्षति क्या बताओ ?"
ज्यों ही सुना धरणिने, कहने लगी यों,
"मेरा सुगौरव, अहो, इसमें जरा-सा !
खोते तुम्हीं मनुजकी महती महत्ता !"

मृत्यु

हे मृत्यु, आज मनमें यह प्रश्न जागा,
"होती कहीं अगर जो तुम शून्य माया,
होता न क्या निखिलका क्षणमें विलोप ?
सत्ता तुम्हीं जगतकी परिपूर्ण - रूपा,
बच्चे समान हम क्या जगके खिलाड़ी,
गोदी महान उसमें, बस, खेलते हैं ?"

कम जानना और अधिक जानना

प्यासा गधा जब गया जलके किनारे,
लौटा उसी क्षण, कहा, "जल घोर काला !"
बोली नदी तुरत ही हँसके गधेसे,
"हैं जानते सब गधे, मम वर्ण काला ;
जो जानते अधिक हैं, कहते सदा ही,
'पानी सफेद रहता, न कदापि काला'।"

विसर्जन

नाटक

नाटकके पात्र

गोविन्दमाणिक्य	त्रिपुराके राजा
नक्षत्र राय	राजाका छोटा भाई
रघुपति	राज-पुरोहित
जयसिंह	रघुपति-द्वारा पालित राजपूत युवक, राज-मन्दिरका सेवक
चाँदपाल	दीवान
नयन राय	सेनापति
ध्रुव	राज-पालित बालक
मन्त्री	
पुरवासीगण	
गुणवती	राज-महिषी
अपर्णा	भिखारिनी

विसर्जन

पहला अंक

पहला दृश्य

मन्दिरमें अकेली गुणवती

गुणवती—मा, मा, मैंने तुम्हारा क्या दोष किया है मा? भिखारी जो पेटके लिए सन्तान बेच देते हैं, उन्हें भी तुम सन्तान देती हो, पापिष्ठा जो लोक-लाजके डरसे अपनी सन्तानका वध कर डालती हैं, उनके गर्भमें भी तुम भेज देती हो असहाय जीवोंको! और मैं, सोनेके पलंगकी महारानी, सैकड़ों दास-दासी और सेना-प्रजा सबकी अधीश्वरी मैं, अपने उत्तप्त अशान्त हृदयमें सिर्फ एक बच्चेके स्पर्शकी लालसामें तड़प रही हूं, अपने प्राणोंमें और-एक प्राणाधिक प्राणके लिए भटक रही हूं। मेरी यह छाती, मेरी ये बाँहें, मेरी यह गोद, मेरी ये आँखें अपने लिए सिर्फ एक जीवन्त निविड़ नीड़ रचना चाहती हैं, जरा-से एक प्राण-कणके लिए! इतना ही तो चाहती हूं, मा, कि उसकी नई आँखें प्रथम प्रकाशमें मुझ ही को देखें, मेरी गोदमें उसके भाषाहीन मुंहसे आनन्दकी पहली हँसी खिल उठे! कुमार-जननी मा, बता किस पापसे मुझे वंचित रखा मातृस्वर्गसे?—

रघुपतिका प्रवेश

—प्रभु, हमेशासे मैं माकी पूजा करती आई हूं। जान-बूझकर मैंने कभी कोई दोष नहीं किया। पुण्यका शरीर है मेरे पतिका, महादेवके समान, फिर किस दोषपर मुझे निःसन्तान रखा महामायाने?

रघुपति—माका खेल है, कौन समझ सकता है बताओ ? पाषाण-तनया इच्छामयी हैं, सुख-दुःख सब उन्हींकी इच्छासे है। धीरज रखो। अबकी बार तुम्हारे नामसे पूजा की जायगी। श्यामा अवश्य प्रसन्न होंगी।

गुणवती—इस साल पूजाकी बलिके पशु मैं स्वयं दूंगी। मैं मन्नत मानती हूं, मा अगर मुझे सन्तान दें तो हर साल मैं एक सौ भैंसे और तीन सौ बकरे चढ़ाऊंगी।

रघुपति—पूजाका समय हो चला।

[दोनोंका प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्य अपर्णा और जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—क्या आदेश है महाराज !

गोविन्दमाणिक्य—छोटा-सा एक बकरीका बच्चा बेचारी इस स्नेहकी पुतली गरीब बालिकासे छीन लाये, माके आगे बलि देनेके लिए ? यह दान क्या प्रसन्न-दक्षिण-हस्तसे लेंगी मा-जननी ?

जयसिंह—मैं कैसे जान सकता हूं, महाराज, कहाँसे लाया करते हैं अनुचरगण पशु, देवीकी पूजाके लिए ! क्यों जी, तुम क्यों रो रही हो ? स्वयं विश्वमाताने जिसे ले लिया है उसके लिए रोना क्या शोभा देता है ?

अपर्णा—कौन है तुम्हारी विश्वमाता ! मेरा बच्चा नहीं पहचानेगा उसे। बिना माका बच्चा है वह, खुद अपनी माको भी नहीं जानता। मुझे अगर आनेमें देर हो जाती तो वह घास तक नहीं खाता, मिमियाता-हुआ देखता रहता है मेरी राह,—जब मैं आती हूं, आके गोदमें लेकर खिलाती हूं, तब खाता है। मा तो मैं हूं उसकी !

जयसिंह—महाराज, अपने प्राणोंका अंश देकर भी अगर उसे बचा सकता तो बचा लेता। किन्तु, मा उसे ले चुकीं, अब मैं उसे कैसे लौटाऊं ?

अपर्णा—माने उसे लिया है ? झूठी बात; राक्षसीने लिया है उसे !

जयसिंह—छि छि, ऐसी बात मुंहसे नहीं निकालते।

अपर्णा—मा, तुमने छीना है मुझ-गरीबिनीका धन! राजा अगर चोरी करे, सुना है उसके ऊपर भी एक राजा है सारे जगतका ; – मा, तुम अगर चोरी करो तो कौन उसका न्याय करेगा! महाराज, तुम्हीं बताओ—

गोविन्दमाणिक्य—बेटी, मेरा मुंह बन्द है। इतनी व्यथा क्यों? इतना खून क्यों? कौन देगा इसका उत्तर?

अपर्णा—यह जो सीढ़ियोंसे खूनकी धारा उतरती चली गई है, यह क्या उसीका खून है? और बच्चा मेरा! हाय हाय, मुझे उसने कितना पुकारा होगा, कितना रोया होगा मेरे लिए वह, व्याकुल आँखोंसे कितना देखता रहा होगा चारों तरफ, कैसा तड़फड़ाया होगा! मेरे प्राण जहाँ थे वहाँसे क्यों नहीं दौड़े आये?

जयसिंह (प्रतिमाके प्रति)—मा, आजन्म पूजता आया हूं, तो भी तेरी माया समझमें नहीं आती। करुणासे रोते हैं मानवके प्राण, – और दया नहीं विश्वजननीके!

अपर्णा (जयसिंहसे)—तुम तो निष्ठुर नहीं हो! तुम्हारी आँखोंमें तो आँसू भर आये मेरे दुःखसे। चले आओ, चले आओ तुम इस मन्दिरको छोड़कर, चले आओ। क्षमा करो मुझे, झूठ-मूठको अपराधी बनाया मैंने तुम्हें।

जयसिंह (प्रतिमाके प्रति)—तुम्हारे मन्दिरमें यह कैसा नवीन संगीत ध्वनित हो उठा आज, हे गिरिनन्दिनी, करुणा-कातर कण्ठसे! भक्तका हृदय अपूर्व वेदनासे व्याकुल हो उठा है। – हे शोभने, कहाँ जाऊं इस मन्दिरको छोड़कर! कहाँ है आश्रय?

गोविन्दमाणिक्य (नेपथ्यसे)—जहाँ प्रेम है। [प्रस्थान

जयसिंह—कहाँ है प्रेम! – हे भद्रे, आओ, आओ तुम मेरी कुटियामें। अतिथिकी मैं देवी-रूपमें पूजा करूंगा आज, प्रण किया है मैंने।

[जयसिंह और अपर्णाका प्रस्थान

दूसरा दृश्य

राज-सभामें सभासदगण

राजा, रघुपति और नक्षत्ररायका प्रवेश

सबके सब (उठकर)—जय हो महाराजकी जय !

रघुपति—राजाके भण्डारमें आया हूं वलिके लिए पशु लेने ।

गोविन्दमाणिक्य—मन्दिरमें जीव-वलि इस सालसे निषिद्ध की जाती है ।

नयन राय—वलि निषिद्ध !

मन्त्री—निषिद्ध !

नक्षत्र राय—अच्छा ! वलि निषिद्ध !

रघुपति—यह क्या स्वप्नमें सुन रहा हूं ?

गोविन्दमाणिक्य—स्वप्न नहीं प्रभु ! अब तक स्वप्नमें था, आज जागरण है। बालिकाकी मूर्ति धरकर स्वयं जननी आकर मुझसे कह गई हैं, जीवोंका रक्त उन्हें नही सुहाता ।

रघुपति—आज तक कैसे सुहाता रहा ? हजारों वर्षोंसे करती आई हैं रक्त पान, आज अकस्मात् अरुचि कैसे ?

गोविन्दमाणिक्य—नहीं किया रक्त-पान। मुह फेर लेती थीं देवी जब तुमलोग खून बहाते थे उनके आगे।

रघुपति—महाराज, क्या कर रहे हो, अच्छी तरह सोच देखो ! शास्त्रका विधान तुम्हारे अधीन नहीं।

गोविन्दमाणिक्य—सब शास्त्रोंसे बड़ा है देवीका आदेश ।

रघुपति—एक तो भ्रान्ति, उसपर अहंकार ! अज्ञ नर, तुम्हीने केवल सुना है देवीका आदेश ! मैंने नहीं सुना ?

नक्षत्र राय—तुम्हारी क्या राय है मंत्री ? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है ! पुरोहितजीने नहीं सुना ?

गोविन्दमाणिक्य—देवीकी आज्ञा प्रतिक्षण ध्वनित हो रही है जगतमें। वह बहरा है जो सुनके भी अनसुनी कर देता है उस वाणीको।

रघुपति—पाखण्डी, नास्तिक हो तुम!

गोविन्दमाणिक्य—पुरोहित, समय नष्ट हो रहा है। अब जाओ मन्दिरके कामसे। प्रचार करते जाना रास्तेमें जाते-हुए, मेरे त्रिपुर-राज्यमें जो कोई जीव-हत्या करेगा जीव-जननीके नामपर, उसे निर्वासन-दण्ड दिया जायगा।

रघुपति—यही स्थिर हुआ?

गोविन्दमाणिक्य—हाँ, यही।

रघुपति (उठकर)—तो विध्वंस है! ध्वंस हो जाओगे!

चाँदपाल (दौड़ा आता है)—हें हें! ठहरो! ठहरो! क्या कर रहे हो पुरोहित!

गोविन्दमाणिक्य—बैठो चाँदपाल।—महाराज, कहते जाओ, मनोव्यथा हलकी करके जाओ अपने कामसे।

रघुपति—तुमने क्या समझ रखा है मनमें कि त्रिपुर-ईश्वरी त्रिपुराकी प्रजा हैं? उनपर प्रचारोगे अपना नियम? हरण करोगे उनकी वलि! इतना सामर्थ्य नहीं तुममें! मैं हूँ माका सेवक! [प्रस्थान

नयन राय—क्षमा करना अधीनकी धृष्टता, महाराज! किस अधिकारसे प्रभु माकी वलि—

चाँदपाल—शान्त होओ सेनापति!

मन्त्री—महाराज, बिलकुल तय ही कर लिया है क्या? आज्ञा अब वापस नहीं ली जा सकती?

गोविन्दमाणिक्य—अब नहीं, मंत्री, पापको नष्ट करनेमें देर नहीं करना चाहिए।

मन्त्री—पापकी क्या इतनी आयु होती है महाराज? कितने हजारों

वर्षोंसे जो प्राचीन विधान देवीके चरणोंमें बूढ़ा हो चला है, वह क्या 'पाप' हो सकता है ?

[राजा चुप रहकर सोचते हैं]

नक्षत्र राय—हाँ, बात तो ठीक है मंत्री, वह क्या 'पाप' हो सकता है ?

मन्त्री—शुरूसे हमारे पितामहगण भक्तिके साथ पालन करते आये हैं इस सनातन प्रथाका। इसका अपमान उन्हींका अपमान है।

[राजा विचारमें मग्न हैं]

नयन राय—सोच देखो महाराज, युग-युगमें जिसने पाई है शत-सहस्र भक्तियोंकी सम्मति, उसे नष्ट करनेका क्या अधिकार है महाराजको !

गोविन्दमाणिक्य (गहरी साँस लेकर)—तर्क रहने दो। जाओ मंत्री, आदेश प्रचार करो जाकर : आजसे बन्द है बलिदान ! [प्रस्थान

मंत्री—यह हुआ क्या !

नक्षत्र राय—हूं, मंत्री, यह हुआ क्या ! सुना था, मगोंके मन्दिरमें बलि नहीं होती,—आखिर मगों और हिन्दुओंमें भेद क्या रह गया ! क्या कहते हो जी चाँदपाल, तुम क्यों चुप हो ?

चाँदपाल—कायर हूँ मैं, क्षुद्र-प्राण, बुद्धि भी कुछ कम है; बगैर समझे ही पालन किया करता हूँ राजाका आदेश।

तीसरा दृश्य

मंदिरमें जयसिंह

जयसिंह—मा, यहाँ सिर्फ तुम हो और मैं। इस मन्दिरमें दिन-भर और कोई भी नही। लम्बा दिन है ! बीच-बीचमें मानो कोई पुकार रहा है मुझे। तेरे पास रहते हुए भी अकेलापन क्यों है मा ?

नेपथ्यमें गीत

चला अकेला पन्थी जगका,
कौन दिखाये पथ इस भवका ?

जयसिंह—मा, यह कैसी माया ! देवताके लिए अपने प्राण देते हैं मानव-प्राण। अभी-अभी तुम निर्वाक निश्चल थीं, —अब जीवन्त हो उठीं, सन्तानकी पुकारसे सजग हो उठीं जननी !

गीत गाते-हुए अपर्णाका प्रवेश

चला अकेला पन्थी जगका,
कौन दिखाये पथ इस भवका ?
ना डर, ना भय,
चंचल चिन्मय
मधुप बना लोभी सौरभका
भटक रहा है पन्थी भवका।

जयसिंह—अकेला ! दक्षिणी पवन अगर बन्द हो जाय, फूलका सौरभ अगर न आये, दसों दिशाएँ अगर जाग उठें सन्देहके समान, तो फिर कहाँ है सुख, कहाँ है मार्ग ? जानती हो, अकेला किसे कहते हैं ?

अपर्णा—जानती हूं। मैं तो परिपूर्ण हृदय लिये बैठी हूं, देना चाहती हूं, पर कोई लेनेवाला नहीं !

जयसिंह—सृजनसे पहले देवता जैसे अकेला है ! ठीक कहती हो ! सच है। मालूम होता है यह जीवन बहुत ज्यादा है, —जितना बड़ा है उतना ही सूना है, उतना ही अनावश्यक।

अपर्णा—जयसिंह, तुम शायद अकेले हो ? इसीसे देखती हूं, जो कंगाल है उससे भी बढ़कर कंगाल हो तुम ! जो तुम्हारा सब-कुछ ले सकती है, मानो तुम उसीको ढूँढ़ रहे हो। इसीसे, भटक रहे हो तुम दीन-दुःखी

सबके द्वारपर। इतने दिन भीख माँगती फिरी मैं; कितने आदमी देखे, कितनों-ही-के मुंहकी तरफ देखती रही, लोगोंने सोचा कि सिर्फ भीखके लिए! इसीसे, दूरसे ही दी उनलोगोंने मुष्टि-भिक्षा तुच्छ दया करके। इतनी दया तो कभी नहीं पाई कहीं भी, जिसे पाकर अपना दैन्य ही भूल गई आज!

जयसिंह—यथार्थ दाता हैं जो, खुद ही उतर आते हैं वे दानके रूपमें दरिद्रकी तरफ, जमीनपर। आकाशसे जैसे वर्षाके रूपमें मेघ उतर आते हैं मरुभूमिपर, वैसे ही देवी उतर आती हैं मानवी होकर, जिससे प्रेम करता हूं उसके मुँहमें। दरिद्र और दाता, देवता और मानव समान हो जाते हैं तब। वो देखो, गुरुदेव आ रहे हैं मेरे।

अपर्णा—तो मैं जाती हूं। ब्राह्मणसे मैं बहुत डरती हूं। कैसी कठिन तीव्र दृष्टि है! कठिन ललाट पाषाण-सोपान है मानो मन्दिरका!

[प्रस्थान

रघुपतिका प्रवेश

जयसिंह (पाँव धोनेका पानी वगैरह आगे रखते हुए)—गुरुदेव!

रघुपति—जाओ, जाओ।

जयसिंह—जल लाया हूं।

रघुपति—रहने दो, रख दो जल।

जयसिंह—कपड़े?

रघुपति—कौन चाहता है कपड़े!

जयसिंह—कोई अपराध बन पड़ा है मुझसे?

रघुपति—फिर! कौन कहता है कि तुमने किया है अपराध? घोर कलिकाल आ गया। आज बाहुबल राहुके समान घेरता चला आ रहा है ब्रह्मतेजको ग्रास करनेके लिए,—सिंहासन उठा रहा है सिर यज्ञ-वेदीपर! हाय-हाय, कलिकालके देवता, तुम भी सभासदों-से चाटुकार बन गये? चतुर्भुजा, चारों हाथ जोड़े हुए हो! बैकुण्ठ क्या फिर छीन लिया दैत्योंने?

देवता क्या सब-के-सब रसातलमें चले गये ? सिर्फ दानव और मानव मिलकर दर्पके साथ विश्वका राज्य भोग रहे हैं ? देवता अगर नहीं रहे तो न सही, ब्राह्मण तो हैं। ब्राह्मणके रोष-यज्ञमें राजदण्ड और सिंहासन हविकाष्ठ बनकर रहेगा ! (जयसिंहके पास जाकर स्नेहके साथ) वत्स, आज तुम्हारे साथ मैंने रूखा आचरण किया है, चित्त मेरा अत्यन्त क्षुब्ध है आज।

जयसिंह—क्या हुआ है प्रभु ?

रघुपति—क्या हुआ है ? पूछो अपमानिता त्रिपुरेश्वरीसे। इस मुँहसे कैसे कहूँ कि क्या हुआ है।

जयसिंह—किसने किया है अपमान ?

रघुपति—गोविन्दमाणिक्यने।

जयसिंह—गोविन्दमाणिक्यने ? किसका अपमान किया है प्रभु ?

रघुपति—किसका अपमान ! तुम्हारा, हमारा, सर्वशास्त्रका. सर्वदेशका, सर्वकालका, सर्वदेश-कालकी अधिष्ठात्री महाकालीका, सबका किया है अपमान तुच्छ सिंहासनपर बैठकर, माकी पूजा-वलि निषिद्ध कर दी है दम्भमें आकर !

जयसिंह—गोविन्दमाणिक्यने !

रघुपति—हाँ, हाँ, उसीने, तुम्हारे राजा गोविन्दमाणिक्यने ! तुम्हारे सर्वश्रेष्ठने, तुम्हारे प्राणोंके अधीश्वरने ! अकृतज्ञ ! बचपनसे पालन किया है मैंने तुझे. कितने स्नेहसे, कितने जतनसे,—आज मुझसे भी प्रिय हो गया तेरे लिए गोविन्दमाणिक्य !

जयसिह—प्रभु, पिताकी गोदमें बैठा क्षुद्र मुग्ध बालक आकाशकी तरफ हाथ बढ़ाता है पूर्णचन्द्र पानेको;—देव, तुम पिता हो मेरे, पूर्णचन्द्र हैं महाराज गोविन्दमाणिक्य !—किन्तु यह क्या बक रहा हूँ मैं ! अभी-अभी क्या सुना मैंने ? माकी पूजाकी वलि रोक दी है राजाने ! यह आदेश कौन मानेगा !

रघुपनि—जो नहीं मानेगा उसे निर्वासन-दंड दिया जायगा !

जयसिंह—मातृपूजा-हीन राज्यसे निर्वासन कोई दंड नही, प्रभु! मेरे ये प्राण रहते असम्पूर्ण नहीं रहेगी जननीकी पूजा।

चौथा दृश्य

राजअन्तःपुरमें गुणवती और परिचारिका

गुणवती—क्या कहा? मन्दिरके द्वारसे रानीकी पूजा वापस कर दी! एक देहपर कितने माथे हैं उसके? कौन है वह अभागा?

परिचारिका—कहनेकी हिम्मत नहीं होती—

गुणवती—कहनेकी हिम्मत नहीं, यह बात कही किस हिम्मतसे? मुझसे भी ज्यादा डर किसका है तुझे?

परिचारिका—क्षमा करो।

गुणवती—कल शामको मैं थी रानी, कल रातको बन्दीजन कर गये हैं स्तुति मेरी, विप्रगण दे गये हैं आशीर्वाद, भृत्य ले गये हैं आज्ञा हाथ जोड़कर, एक ही रातमें उलट गये सारे नियम? देवीने नहीं पाई पूजा, रानीकी महिमा मिल गई मिट्टीमें! त्रिपुरा क्या स्वप्न-राज्य था! जल्दी बुला ला पुरोहितजीको। [परिचारिकाका प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्यका प्रवेश

गुणवती—महाराज, सुन रहे हो? माके द्वारसे मेरी पूजाकी बलि लौट आई?

गोविन्दमाणिक्य—जानता हूं मैं।

गुणवती—जानते हो तुम? निषेध नहीं किया फिर भी? जान-बूझकर महिषीका अपमान!

गोविन्दमाणिक्य—उसे क्षमा करो, प्रिये!

गुणवती—दयाका शरीर है तुम्हारा, महाराज, किन्तु यह तो दया नहीं,

यह तो सिर्फ कायरता है ! दयासे दुर्बल हो तुम, अपने हाथसे अगर दण्ड न दे सको उसे, तो मैं दूँगी दण्ड। बताओ मुझे, कौन है वह अपराधी ?

गोविन्दमाणिक्य—देवी, मैं हूं। अपराध और-कुछ नहीं, तुम्हें दी है व्यथा, यही है अपराध मेरा।

गुणवती—क्या कहते हो, महाराज !

गोविन्दमाणिक्य—आजसे देवीके नामपर जीवोंका रक्तपात बन्द कर दिया गया है अपने राज्यमें।

गुणवती—किसने किया है बन्द ?

गोविन्दमाणिक्य—जननीने।

गुणवती—किसने सुना ?

गोविन्दमाणिक्य—मैंने।

गुणवती—तुमने ? महाराज, सुनके हँसी आती है। राज-द्वारपर आई थीं भुवनेश्वरी करने प्रार्थना !

गोविन्दमाणिक्य—हँसो मत रानी ! जननीने स्वयं आकर सन्तानके प्राणोंमें वेदना जगा दी है, प्रार्थना नहीं !

गुणवती—रक्खो ये बातें अपनी, महाराज, मन्दिरके बाहर है तुम्हारा राज्य। जहाँ तुम्हारी आज्ञा नहीं चल सकती वहाँ आज्ञा न दिया करो।

गोविन्दमाणिक्य—माकी आज्ञा है, मेरी नहीं।

गुणवती—कैसे जाना ?

गोविन्दमाणिक्य—क्षीण दीपालोकमें अन्धकार रह जाता है एक जगह ; सर्वत्र उजाला करता है दीप, पर अपनी छाया नहीं मिटा सकता वह। 'दिआ तले अँधेरा'-जैसी ही बुद्धि है मानवकी ; जितना ही उजाला करता है दान, उतनी ही संशयकी छाया रख छोड़ता है अपने लिए। स्वर्गसे जब उतरता है ज्ञान, तो क्षणमें संशय दूर हो जाता है। मेरे हृदयमें अब संशयका लेश भी नहीं।

गुणवती—सुना है अपना पाप-पुण्य अपने ही लिए होता है। तुम रहो अपने असंशयको लेकर, मेरा द्वार छोड़ दो, अपनी पूजाकी वलि लेकर मैं जाऊँ माके द्वारपर।

गोविन्दमाणिक्य—देवी, जननीकी आज्ञा मैं उल्लंघन नहीं कर सकता।

गुणवती—मैं भी नहीं कर सकती सत्य-भंग। माके आगे प्रण किया है मैंने,—यथाशास्त्र यथाविधि पूजा करूंगी मैं उनकी। जाओ, तुम जाओ।

गोविन्दमाणिक्य—जो आज्ञा, महारानी! [प्रस्थान

रघुपतिका प्रवेश

गुणवती—पुरोहितजी, मेरी पूजा लौटा दी है माके द्वारसे?

रघुपति—महारानी, तुम्हारी नहीं, माकी पूजा लौटाई गई है आज! उञ्छजीवी दरिद्रकी भिक्षा-लब्ध पूजा, राजेन्द्राणी, तुम्हारी पूजासे कम नहीं। किन्तु इतना बड़ा सर्वनाश कि माकी पूजा लौटाई गई! इतना बड़ा सर्वनाश कि राज-दर्प क्रमशः फूलकर कर रहा है उल्लंघन जगत-राज्यकी सीमा, देवीका द्वार रोककर, जननीके प्रति आँखे निकालकर!

गुणवती—क्या होगा अब, पुरोहित?

रघुपति—महामाया ही जानें! मैं तो सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि जिस सिंहासनकी छाया पड़ी है माके द्वारपर, फूंकसे उड़ जायगा वह दम्भ-मच बुद्बुदकी तरह। युग-युगसे ऊपरकी ओर देखकर राज-पिता और पितामहोंने जिस राज-महिमाको किया है अभ्रभेदी, क्षणमें वह वज्रदीर्ण दग्ध झंझाहत होकर धूलमें मिल जायगी।

गुणवती—रक्षा करो, रक्षा करो प्रभु!

रघुपति—हाँ, हाँ, मैं रक्षा करूंगा तुम्हारी! जो प्रबल राजा स्वर्ग और मर्त्यमें प्रचार कर रहे हैं अपना शासन, तुम उन्हींकी रानी हो, देव-ब्राह्मण पर जो,—धिक्, धिक्, सहस्र धिक्! लाखों धिक्कार उसे। कलिके ब्राह्मणको

धिक ! ब्रह्म-शाप कहाँ है अब ! व्यर्थ ब्रह्मतेज सिर्फ अपने ही हृदयको वृश्चिक-सा डस रहा है आज, मिथ्या है ब्रह्म-आडम्बर ! (उपवीत छूनेको उद्यत)

गुणवती—क्या कर रहे हैं देव ! शान्त होओ, दया करो प्रभु, दया करो निर्दोषपर।

रघुपति—तो लौटा दे वह ब्राह्मणका अधिकार।

गुणवती—लौटा दूंगी। जाओ प्रभु, पूजा करो मन्दिरमें जाकर, नहीं होगा पूजामें कोई विघ्न।

रघुपति—जो आज्ञा, राज-अधीश्वरी ! देवी कृतार्थ हुईं आज तुम्हारे आदेशके बलसे, वापस मिल गया फिर ब्राह्मणका तेज। धन्य रहोगी तुम, जब तक नहीं जागता कल्कि अवतार। [प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्यका पुनःप्रवेश

गोविन्दमाणिक्य—अप्रसन्न प्रेयसीका मुख संसारमें सम्पूर्ण प्रकाश, सब सुख लुप्त कर रखता है, देवी ! इसीसे उन्मन-सा उत्सुकचित्त लौट आया हूं मैं।

गुणवती—जाओ, जाओ, राज-अन्तःपुरमें न आओ राजन् ! अभिशाप न लाओ यहाँ।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, प्रेम कर देता है नाश अभिशापका, दया कर देती है दूर अकल्याणको। सतीके हृदयसे प्रेम चला जाय तो पतिगृहमें लग जाता है अभिशाप।—तो जाऊँ, देवी !

गुणवती—जाओ। लौटकर अब न दिखाना मुख।

गोविन्दमाणिक्य—याद करोगी जब, आऊँगा मैं उसी क्षण।

[प्रस्थानोन्मुख

गुणवती (पैरों पड़कर)—क्षमा करो, क्षमा करो नाथ ! इतने निष्ठुर हो गये हो तुम, रमणीके अभिमानको धक्का देकर चले जाओगे ? जानते नहीं

क्या प्रियतम, व्यर्थ-प्रेम दिखाई देता है रोषका रूप धर छद्मवेशमें ? अच्छा, मानती हूं मैं, अपने अभिमानसे अपना ही अपमान किया है मैंने, क्षमा करो।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, तुमपरसे उठते ही विश्वास, उसी क्षण टूट जाता यह जीवन-बन्धन। जानता हूं प्रिये, मेघ क्षणिक हैं, सूर्य है चिरकालका।

गुणवती—मेघ हैं क्षणस्थायी। बादल ये दूर होंगे, विधाताका उद्यत बज्र लौटेगा यथास्थान, चिरकालका सूर्य उदित होगा फिर चिरकालकी प्रथा जगाकर, अभय पायेगा फिर विश्व सारा, भूल जायगा वह क्षण-भरका दुःस्वप्न! ऐसी ही आज्ञा करो, नाथ! ब्राह्मण पा जायें फिर अपना अधिकार, देवी ग्रहण करें अपनी पूजा, राजदण्ड लौट आये अपने अप्रमत्त मर्त्य-अधिकारमें।

गोविन्दमाणिक्य—धर्मकी हानि करना ब्राह्मणका अधिकार नहीं, देवी! असहाय जीवोंका रक्त नहीं है देवीकी पूजा। देवताका आदेश पालन करना राजा और विप्र सभीका धर्म है।

गुणवती—भिक्षा, भिक्षा चाहती हूं मैं। एकाग्रमनसे प्रार्थना है मेरी तुम्हारे चरणोंमें, नाथ! चिरागत प्रथा चिरप्रवाहित मुक्त पवनके समान है; राजाका धन नहीं वह, — तो भी, हाथ जोड़कर समस्त प्रजाके नामपर भीख माँगती है रानी तुम्हारी! प्रेमकी दुहाई मानो प्रियतम! विधाता भी करेंगे क्षमा प्रेम-आकर्षण-वश की गई कर्त्तव्यकी त्रुटिको।

गोविन्दमाणिक्य—यही क्या उचित है, महारानी? नीच स्वार्थ, निष्ठुर क्षमता-दर्प, अन्ध अज्ञानता, चिर रक्त-पानसे फूली-हुई हिंस्र वृद्ध प्रथा, सहस्र शत्रुओंसे अकेला जूझकर, श्रान्त ले अपना देह-मन, आता हूं अपने घर, नारी-चित्तसे करने अमृत-पान; यहाँ भी नहीं है दयाकी सुधा? घरमें बहता है पुण्य-प्रेम, उसमें भी मिल गई रक्तधारा? इतना रक्तस्रोत किस दैत्यने बहाया है! भक्ति और प्रेममें भी रक्त सन गया, क्रूर हिंसाने दयामयी रमणीके हृदयमें लगा दी खूनकी छाप! फिर भी, न रोकूं उस खूनको?

मुणवती (मुँह ढककर)—जाओ, जाओ तुम।

गोविन्दमाणिक्य—हाय, महारानी, कर्तव्य कठिन हो जाता है रमणीके मुँह फेरनेसे। [प्रस्थान

गुणवती (रो उठी)—अरी ओ अभागिनी, अब तक यह कैसी भ्रान्ति पोस रही थी मनमें! रंच भी न संशय था,—व्यर्थ होगा आज इतना विनय, इतना अनुरोध, इतना अभिमान। धिक, किस सुहागसे पुत्रहीना करती है पतिसे अभिमान! भस्म हो अभिमान तेरा। जले भाग्य, राख हो जाय रानीका गौरव। व्यर्थ है प्रेमका खेल, व्यर्थ है सुहागका रोना। समझ लिया स्थान अपना,—या तो धूलमें लुटा अपना सिर, या फिर उठा फन, भुजगिनी बन दिखा तेज अपना!

पाँचवाँ दृश्य

मन्दिर

कुछ लोगोंका प्रवेश

नेपाल—कहाँ है जी, तुम्हारे तीन सौ बकरे और एक सौ भैंसे! यहाँ तो छिपकलीकी कटी पूँछ भी नहीं दिखाई देती! बाजा-वाजा सब गये कहाँ, सब सुनसान पड़ा हुआ है! गाँठसे खर्च करके पूजा देखने आये, खूब सजा मिली!

गणेश—देख, मन्दिरके सामने खड़ा होकर ऐसी बात न निकाल मुँहसे! माको बलि नहीं मिली, मा तुरत जागकर तुम्हींमेंसे एक-एकको पकड़के ठूंस लेगी अपने मुँहमें।

हारू—क्यों! गये-साल कहाँ थे सब? और उस साल, जब व्रत पूरा करके रानी-माने पूजा चढ़ाई थी, तब क्या तुमलोगोंके पाँवमें काँटे चुभे थे? तब तो नहीं आये कोई पूजा देखने? खूनसे गोमती लाल हो गई

थी। तुमलोगोंको एक-एकको पकड़कर माके आगे चढ़ा दिया जाय तब मेरे मनकी जलन मिटे।

कानू—अरे भइया, झूठे ही गुस्सा होते हो। हमारा क्या अब कुछ कहने-लायक मुँह रह गया है? नहीं तो भला खड़े-खड़े इसकी बातें सुनते।

हारू – ठीक कह रहे हो भइया, जरा-सेमें मुझे गुस्सा आ जाता है। उस दिन यह 'साला' तक चढ़ा था, उससे ज्यादा एक बात भी निकालता न मुहसे, या बदनसे हाथ छुआता न, तो तुम्हारी कसम, फिर मैं—

नेपाल—अच्छा! अच्छा तो आ जा, देखूँ किसने कितना माका दूध पिया है!

हारू—आ न, आता क्यों नहीं? होश है, यहाँके थानेका जमादार मेरा ममेरा-भाई लगता है!

नेपाल—तो ले आ उसे भी, अपने मामाको भी ले आ, उसके भी होश ठिकाने कर दूंगा।

हारू—तुमलोगोंने सुन लिया न!

गणेश और कानू—छोड़ो इस झमेलेको, चलो घर चलें। आज अब कुछ अच्छा नहीं लगता। छोड़ो इस मजाकको।

हारू—मजाक है यह? मेरे मामाकी बेइज्जती! खुद हमारे जमादारके बापकी—

गणेश और कानू—अरे छोड़ अपने मामाको। उधर देख, कौन-कौन आ रहे हैं! [सबका प्रस्थान

रघुपति, नयनराय और जयसिंहका प्रवेश

रघुपति—मापर भक्ति नहीं है तुम्हारी?

नयन राय—किसकी मजाल है जो कहे ऐसी बात! भक्त-वंशमें जन्म है मेरा।

रघुपति—साधु, साधु ! तो तुम माके सेवक हो, हमारे ही आदमी हो ।

नयन राय—प्रभु, जो मातृभक्त हैं मैं उन्हींका दास हूं ।

रघुपति—साधु ! भक्ति तुम्हारी अक्षय हो । भक्ति तुम्हारी भुजाओंमें संचार करे अति दुर्जय शक्ति । भक्ति तुम्हारी तलवारमें सान चढ़ावे; और दे उसे वज्र-जैसा तेज ! भक्ति तुम्हारे हृदयमें सदा वास करे । पदकी मर्यादा सबसे ऊँची है ।

नयन राय—ब्राह्मणका आशीर्वाद व्यर्थ नहीं होगा ।

रघुपति—तो सुनो, सेनापति, तुम अपना सारा बल इकट्ठा करके चढ़ाओ माके चरणोंमें । नष्ट कर दो, भ्रष्ट कर दो मातृ-विद्रोहीको ।

नयन राय—आदेश दो, प्रभु ! कौन है माका शत्रु ?

रघुपति—गोविन्दमाणिक्य ?

नयन राय—हमारे महाराज ?

रघुपति—लेकर अपनी सेना, आक्रमण कर दो उसपर ।

नयन राय—धिक् है इस पाप-परामर्शको । प्रभु, यह कैसी परीक्षा कर रहे हो मेरी ?

रघुपति—हाँ, है तो परीक्षा ही । किसके सेवक हो तुम, अबकी बार परीक्षा होगी इसकी । छोड़ो चिन्ता, छोड़ो दुबिधा, समय नहीं है अब, त्रिपुरेश्वरीकी आज्ञा ध्वनित हो रही है प्रलयकी भेरी-सी ! टूट चुके हैं आज समस्त बन्धन !

नयन राय—चिन्ता नहीं, दुबिधा नहीं कोई । जिस पदपर रक्खा है देवीने मुझे, उसपर मैं अटल रहूंगा ।

रघुपति—साधु !

नयन राय—इतना नराधम हूं मैं जननीके सेवकोंमें, —मेरे ऊपर ऐसी आज्ञा क्यों ? मैं हो जाऊँ विश्वासघातक ! स्वयं खड़ी हैं विश्वमाता, हृदयके विश्वासपर, वही है उनका अटल आसन,—देवी खुद ही कहेंगी

उसे तोड़नेको अपने मुंहसे ? तब तो फिर आज जायगा राजा, कल जायगी देवी,—मनुष्यत्व टूटकर धूलमें मिल जायगा, खोखली नींववाले महलकी तरह।

जयसिंह—धन्य है सेनापति, धन्य है।

रघुपति—तुम भी धन्य हो! किन्तु यह कैसी भ्रान्ति तुममें ? जो राजा विश्वासघाती है जननीके समक्ष, उसके साथ विश्वासका बन्धन रहा कहाँ ?

नयन राय—क्या होगा झूठा तर्क करके ? बुद्धिके कुटिल चक्रमें मैं नहीं पड़ना चाहता। मैं जानता हूं, एक ही मार्ग है, वह है विश्वासका मार्ग। उसी एक सीधे मार्गसे चिरदिन चला चलेगा अबोध अधम सेवक यह नयनराय।

[प्रस्थान

जयसिंह—चिन्ता किस बातकी, देव ? अपने विश्वासके बलपर हम भी करेंगे काम। डर किसका, प्रभु ? सैन्य-बलका काम क्या ? अस्त्र है क्या चीज़! जिसपर जिस कामका भार है, उसीमें बल है उस कामका। करके रहेंगे हम माकी पूजा, अगर माके सच्चे सेवक हों हम। चलो प्रभु, बजायें माका डंका, बुला लायें पुरवासियोंको। मन्दिरका द्वार खोल दें।—अरे, आओ रे, आओ सब, कहो, 'अभयाकी पूजा होगी'—निर्भय होकर आओ रे, तुम माकी सन्तान हो! आओ पुरवासियो!

[जयसिंह और रघुपतिका प्रस्थान

पुरवासियोंका प्रवेश

अक्रूर—आओ, आओ, चले आओ सब-कोई।

सबके सब—जय माताकी जय!

हारू—आओ रे, माताकी सन्तान, दोनों हाथ उठाकर नाचें, आओ!

नृत्य-गीत

हो,—नाच रही, नाच रही मत्ता दिगम्बरी,
हाँ,—नाचेंगे हम भी सँग माता भयङ्करी!

दश-दिश कर अन्धकार मत्त हुई दिग्वसना,
जलती ज्यों वह्निशिखा लपक रही है रसना।
देख-देख मरनेको दौड़ पड़े एकसङ्ग,
आकुल हो पड़ते जा दीपकमें ज्यों पतङ्ग।
नभमें उड़ें केश कारे,
सूर्य छिपे डरके मारे।
(तेरे) बहती रक्तधारा अङ्ग,
त्रिलोक काँपे एकसङ्ग।
हाँ,—नाच रही, नाच रही मत्ता दिगम्बरी,
हाँ,—नाचेंगे हम भी सँग, माता भयङ्करी!

सबके सब—जय माताकी जय!

गणेश—अब कुछ नहीं डर।

कानू—अरे, वे दक्खिनदहके आदमी सब गये कहाँ?

गणेश—माकी महिमा बच्चुओंसे सही नहीं गई,—भाग गये!

हारू—सिर्फ माकी महिमा नहीं, मैंने उन्हें ऐसा कसके डाट दिया है कि बच्चुओंको छठीका दूध याद आ गया है, अब इधर मुँह भी नहीं करनेके। समझे अक्रूर भइया, मेरे भाई जमादारका नाम सुनते ही उनके चेहरे उतर गये थे।

अक्रूर—हमारे निताईने उस दिन उनलोगोंको खूब कड़ी-कड़ी बातें सुना दी थीं। वो जो है न, जिसका छछूँदर-सा मुँह है, वो आया था झपटके उत्तर देने, हमारे निताईने कहा, 'अरे तू दक्षिणदहका रहनेवाला, तू उत्तरका क्या जाने!' सुनके हमलोग तो हँसते-हँसते लोटपोट हो गये।

गणेश—ऐसे तो निताई भला-मानस है, पर बातोंमें उससे कोई नहीं जीतनेका।

हारू—निताई मेरा फूफा लगता है।

कानू—सुनो इसकी बात,—निताई तेरा फूफा कबसे हुआ ?

हारू—तुमलोग तो मेरी हर बातमें पेच निकालते हो। अच्छा, मेरा फूफा न सही, तेरा ही सही। तुझे इससे मतलब ?

रघुपति और जयसिंहका प्रवेश

रघुपति—सुना है सेना आ रही है। जयसिंह, तुम अस्त्र लेकर यहाँ खड़े होओ। तुमलोग भी आओ, यहाँ खड़े हो जाओ। सब मिलके मन्दिरके द्वारकी रक्षा करना। तुमलोगोंके लिए हथियार भिजवाता हूं।

गणेश—हथियार! हथियार क्यों महाराज ?

रघुपति—माताकी पूजा बन्द करनेके लिए राजाकी सेना आ रही है।

हारू—सेना आ रही है! महाराज, दण्डवत करता हूँ।

कानू—हम हैं ही कितने, फौज आयेगी तो हम क्या कर सकते हैं ?

हारू—कर तो सब-कुछ सकते हैं, पर फौज आयेगी तो यहाँ इतनी जगह कहाँ है ? लड़ना तो दूर रहा, यहाँ खड़े कहाँ होंगे ?

अक्रूर—फालतू बात छोड़ो। देखते नहीं, महाराज मारे गुस्सेके काँप रहे हैं!—हाँ तो, महाराज, आज्ञा दें तो हम अपना दल-बल समेत तैयार होकर आवें ?

हारू—हाँ, यही ठीक होगा। साथ ही मैं अपने ममेरे-भाईको भी लेता आऊँगा। पर, अब देर करना ठीक नहीं। [सब जाना चाहते हैं

रघुपति (क्रुद्ध होकर)—ठहरो तुमलोग।

जयसिंह हाथ जोड़कर)—जाने दो प्रभु, इनलोगोंको। प्राणोंके डरसे काँप रहे हैं ये मूर्ख। मरनेके पहले ही मर चुके हैं। मैं हूं माका सैनिक एकमात्र। एक शरीरमें सहस्र सेनाका बल लिये-हुए मैं अकेला ही लड़ूंगा। अस्त्रकी जरूरत नहीं। डरपोकोंको जाने दो।

रघुपति (स्वगत)—वह जमाना चला गया। अब अस्त्र चाहिए, सिर्फ

भक्तिसे काम नहीं चलेगा। (जयसिंहसे) — तो लाओ वलि, जयसिंह, पूजा शुरू कर दो।

बाहर बाजे बजते हैं

जयसिंह—सेना नहीं प्रभु, रानीकी तरफसे पूजा आ रही है।

रानीके अनुचर और पुरवासियोंका प्रवेश

बहुतसे लोग—अरे, डरनेकी कोई बात नहीं! फौज नहीं, माकी पूजा आ रही है।

हारू—खबर लग गई मालूम होता है कि हमलोग यहाँ मौजूद हैं। अब फौज जल्दी नहीं आनेकी।

कानू—महाराज, रानी-माने पूजा भेजी है।

रघुपति—जयसिंह, शीघ्र पूजाका आयोजन करो।

[जयसिंहका प्रस्थान

पुरवासियोंका नृत्य-गीत और राजाका प्रवेश

राजा—चले जाओ यहाँसे, ले जाओ वलि! रघुपति, सुना नहीं मेरा आदेश?

रघुपति—नहीं सुना।

राजा—तो तुम इस राज्यके नहीं।

रघुपति—मैं नहीं इस राज्यका! मैं जहाँ हूं, वहाँ आनेसे राजदण्ड खिसक पड़ेगा हाथसे, राज-मुकुट धूलमें लुढ़कता फिरेगा। कौन हो, लाओ माकी वलि!

बाजे बजने लगते हैं

राजा—बन्द करो बाजे! (अनुचरके प्रति) — कहाँ है सेनापति, बुलाओ। हाय, रघुपति, आखिर सेनासे घेरना पड़ा धर्मको! लज्जा होती है सेना बुलानेमें, बाहुबल दुर्बलताकी ही याद दिलाता है।

रघुपति—हाय अविश्वासी, सचमुच ही क्या तुम समझ बैठो हो कि कलियुगमें ब्रह्मतेज नष्ट हो गया है, इसीसे इतना दुःसाहस है ? नहीं हुआ नष्ट। जो आग भीतर जल रही है, तुम्हारे सिंहासनको वह जलाकर भस्म कर डालेगी। अन्यथा, उस महानलसे जलाकर भस्म कर दूंगा सब शास्त्रोंको, सम्पूर्ण ब्रह्मगर्वको, समस्त तीस कोटि देवताओंको। आज नहीं हो तुम महाराज, राजाधिराज, आजका दिन तुम्हें आजीवन याद रखना पड़ेगा।

राजा (नयन रायसे)—अपनी सेनाके साथ यहाँ तैनात रहो तुम, जीव-वलि रोकनेके लिए।

नयन राय—क्षमा करो महाराज, इस अधम किंकरको। अक्षम है राजाका सेवक यहाँ देवीके मन्दिरमें। जहाँ तक जा सकता है राजाका प्रताप, हम उनके साथ ही रहते हैं छायाकी तरह, किन्तु—

चाँदपाल—बस, बस, सेनापति ! दीपशिखा रहती है एक जगह, किन्तु उसका प्रकाश जाता है दूर तक। राज-इच्छा जहाँ जायगी वहीं जायँगे हम।

राजा—सेनापति, मेरा आदेश तुम्हारे विचाराधीन नहीं। धर्म-अधर्म, हानि-लाभ सब मेरा है; तुम्हारा काम है सिर्फ राज-आज्ञा पालन करना।

नयन राय—इन बातको हृदय नहीं मानता, महाराज ! सेवक जरूर हूं किन्तु फिर भी आदमी हूं। बुद्धि है, विवेक है, धर्म है;– महाराज प्रभु हैं, सब-कुछ हैं,– किन्तु देवता भी हैं मेरे !

राजा—तो रख दो अस्त्र। चाँदपाल, तुम्हें किया जाता है सेनापति, दोनों पद सम्हालो एकसाथ। सावधानीसे रक्षा करो मन्दिरकी।

चाँदपाल—जो आज्ञा, महाराज।

राजा—नयन राय, सौंप दो अपने अस्त्र चाँदपालको।

नयन राय—चाँदपालको ? क्यों महाराज ? ये अस्त्र तुम्हारे पूर्व राजपितामहोंने दिये हैं हमारे पितामहोंको। लेना चाहें तो स्वयं राजा ले

सकते हैं ।—हे पितृ-पितामहगण, स्वर्गमें हो तुमलोग, साक्षी रहो तुम सब, आज तक जिस राज-विश्वासकी रक्षा करते आये हैं हम, सम्पूर्ण काय-मन-वाक्यसे, साग्निककी पुण्य-अग्निके समान, आज उनका धन हम उन्हींको सौंप रहे हैं निष्कलंक ।

चाँदपाल--मेरी बात सुनो भाई !

नयन राय—धिक्, धिक् तुम्हें ! चुप रहो ! महाराज, विदा होता हूं ।

[नमस्कार करके प्रस्थान

राजा—स्नेहके लिए कोई स्थान नहीं राजकार्यमें । देवताका कार्यभार आ पड़ा तुच्छ मनुष्यपर, हाय, कैसा कठोर है कर्तव्य !

रघुपति—इसी तरह ब्रह्म-शाप फलता है ! विश्वासी-हृदय चले जाते हैं दूर धीरे-धीरे ; नीचेको धसक जाता है खड़े होनेका स्थान ।

जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—आयोजन हो गया पूजाका । तैयार है वलि !

राजा—वलि किसके लिए ?

जयसिंह—महाराज, तुम यहाँ ! तो, सुनो मेरी प्रार्थना, मेरी बिनती है इन चरणोंमें, प्रभु, उठा लो अपना गर्वपूर्ण आदेश । मानव होकर आड़े न आओ देवताके !

रघुपति—धिक् धिक् जयसिंह ! उठो, उठो । किसके चरणोंमें पड़ रहे हो तुम ? मैं जिसका गुरु हूं, संसारमें उसका मस्तक सिर्फ एक ही जगह झुक सकता है, अपने गुरुके चरणोंमें । मूढ़, उठा मस्तक, गुरुके चरणोंमें क्षमा माँग । राजाका आदेश लेकर करेंगे हम देवीकी पूजा ! कराल कालिका, क्या इतना पतन हो गया है तेरा ? रहने दो पूजा, रहने दो वलि, देखूंगा राजाका दर्प कब तक रहता है ! चले आओ जयसिंह, चले आओ ।

[रघुपति और जयसिंहका प्रस्थान

राजा—विनय क्या संसारमें रहा ही नहीं कहीं ? महादेवी, जो तुम्हारे ही चरण-तले विचरण करते हैं अहोरात्र, उन्होंने भी नहीं सीखा, हाय, कि कितने क्षुद्र असहाय हैं वे ? तुम्हारी महिमा हरण करके भी वे अपने काय-मन-वाक्यमें इतना अहंकार वहन करते हैं ! [प्रस्थान

—

दूसरा अंक

पहला दृश्य

मन्दिरमें रघुपति जयसिंह और नक्षत्रराय

नक्षत्र राय—किस लिए बुलाया है गुरुदेव ?

रघुपति—कल रातको सपना दिया है देवीने, तुम राजा होंगे !

नक्षत्र राय—मैं होऊँगा राजा ! हः हः हः ! कहते क्या हो पुरोहित ! यह तो बिलकुल नई बात सुनाई, मैं होऊँगा राजा !

रघुपति—हाँ, तुम होंगे राजा !

नक्षत्र राय—असम्भव ! भला कैसे हो सकता है यह ?

रघुपति—देवीका स्वप्न सत्य है। राज-मुकुटके अधिकारी होंगे तुम। इसमें कोई भी सन्देह नहीं।

नक्षत्र राय—कोई भी सन्देह नहीं ! किन्तु अगर न हुआ राजा, तो ?

रघुपति—मेरे वचनोंपर अविश्वास ?

नक्षत्रराय—अविश्वासकी बात नहीं महाराज, दैवसे अगर न हुआ तो—

रघुपति—इसमें अन्यथा नहीं हो सकता।

नक्षत्र राय—अन्यथा नहीं हो सकता ? देखना महाराज; वचन निभाना आखीर तक। राजा होकर पहले तो मन्त्रीको हटाऊँगा। हमेशा उसकी मुझ ही पर नजर रहती है, जैसे वह बापका बाबा हो ! बड़ा डर लगा रहता है उसका समझे, महाराज, — तुम्हें बनाऊँगा मन्त्री।

रघुपति—मन्त्रित्वपर पदाघात करता हूं मैं ।

नक्षत्र राय—अच्छा, जयसिंह होगा मन्त्री । किन्तु महाराज, अगर आप सब-कुछ जानते हैं तो बताइये भला, कब होऊँगा मैं राजा ?

रघुपति—राज-रक्त चाहती हैं देवी !

नक्षत्र राय—राज-रक्त चाहती हैं देवी !

रघुपति—राज-रक्त लाओ पहले, तब होंगे राजा ।

नक्षत्र राय—कहाँ पाऊँगा राज-रक्त ?

रघुपति—घरमें हैं गोविन्दमाणिक्य, उन्हींका रक्त चाहिए ।

नक्षत्र राय—उन्हींका रक्त चाहिए !

रघुपति—स्थिर रहो जयसिंह, चंचल न होओ ।—समझे कुछ ? सुनो बताता हूं, गुप्तरूपसे जो राजाका वध करके चढ़ायेगा राज-रक्त देवीके चरणोंमें, — जयसिंह, स्थिर अगर न रह सको तो चले जाओ अन्यत्र कहीं ! समझे नक्षत्र राय, देवीका आदेश है, राज-रक्त चाहिए, श्रावणकी शेष रात्रिमें । तुम दोनों हो राज-भ्राता, बड़ा अगर बच गया तो तुम्हारा रक्त है । महाकाली रक्तकी प्यासी हैं, विचार करनेका समय नहीं अब ।

नक्षत्र राय—भीषण भयंकर प्रस्ताव है तुम्हारा ! महाराज, जरूरत नहीं मुझे राज्यकी । राजाका खून राजाकी ही देहमें बना रहने दो, मैं जैसा हूं वैसा ही ठीक हूं ।

रघुपति—नहीं, नहीं, मुक्ति नहीं मिल सकती किसी भी हालतमें । राज-रक्त लाना ही होगा ।

नक्षत्र राय—तो बताओ प्रभु, क्या करना होगा मुझे ?

रघुपति—तैयार रहो सदा । जब जैसा कहूँ, शीघ्र ही पूरा करना उस कामको । और जब तक कार्य सिद्ध न हो, मुँह रखना बन्द । अब जाओ ।

नक्षत्र राय—हे मा कात्यायनी ! [प्रस्थान

जयसिंह—यह क्या सुना इन कानोंसे ! दयामयी माता, यह कैसी

बात ! तेरी आज्ञा है यह ! भाईके हाथ भाईकी हत्या ! विश्वकी जननी है तू ! — गुरुदेव ! ऐसी आज्ञाको मातृ-आज्ञा कहते हो !

रघुपति—और उपाय क्या है बताओ ?

जयसिंह—उपाय ! कैसा उपाय, प्रभु, किसका उपाय ? हाय, हाय, धिक्कार है ! जननी, क्या तुम्हारे हाथमें खड्ग नहीं ? तुम्हारे क्रोधमें वज्रानल नहीं ? तुम्हारी इच्छा आज उपाय खोज रही है ! ढूंढ़ रही है रसातलगामी सुरंगका पथ, चोरकी तरह ! यह कैसा पाप !

रघुपति—पाप-पुण्यका तुम क्या जानो, बालक ?

जयसिंह—तुम्हींसे तो सीखा है सब-कुछ ।

रघुपति—तो आओ वत्स, और-एक शिक्षा दूँ तुम्हें । पाप-पुण्य कुछ नहीं । कौन किसका भाई है और कौन किसका अपना-पराया ? किसने कहा कि हत्याकाण्ड पाप है ? यह जगत महाहत्याशाला है ! जानते नहीं क्या, कि प्रतिक्षण लाखों-करोड़ों प्राणी मौतके मुँहमें जाते हैं । यह किसका खेल है ? हत्यासे मढ़ी-हुई है इस धरणीकी धूल । पद-पदपर चरण-तले दलित हो रहे हैं सैकड़ों कीट, वे क्या जीव नहीं ? रक्तके अक्षरोंमें अविश्राम लिखते जा रहे हैं वृद्ध महाकाल विश्व-पत्रपर जीवोंका क्षणिक इतिहास । वनमें हत्या, नगरमें हत्या, विहंगके नीड़में हत्या, कीटके गह्वरमें हत्या, अगाध समुद्र और निर्मल आकाशमें हत्या, सर्वत्र चल रही है हत्या । जीविकाके लिए, खेलके लिए, कारण-अकारणसे, इच्छा-अनिच्छासे, हत्याकी ताड़ना ही तो निखिल-विश्वको महाचक्रकी तरह घुमाती चली जा रही है । महाकाली कालस्वरूपिणी खड़ी हैं रक्त-पिपासु लाल-जिह्वा निकाले ! विश्वकी दसों दिशाओंसे चिर-रक्तधारा फटी पड़ती है उनके अनन्त खर्परमें, निष्पेषित द्राक्षासे जैसे रस निकलता है—

जयसिंह—बस बस, शान्त होओ, देव !—मायाविनी, पिशाचिनी, मातृहीन इस संसारमें तू आई है माके छद्मवेशमें रक्त पीनेके लोभसे ? हाय, क्षुधित

विहंग-शिशु अरक्षित नीड़में बैठे देखा करते हैं माकी राह, वहाँ पहुँच जाता है लुब्ध काक, व्यग्रकण्ठसे अन्धे बच्चे 'मा' समझकर पुकारते हैं उसे, गँवाते हैं कोमल प्राण अपने, निरीह बेचारे, हिंसक शिकारीकी चोंचकी चोटसे! तेरा भी क्या वही व्यवसाय है निष्ठुरे! प्रेम झूठा, स्नेह झूठा, दया झूठी, झूठा है और सब-कुछ, सत्य है सिर्फ अनादि-अनन्त हिंसा! तो, क्यों मेघसे झरती है आशीर्वाद-सी वृष्टिकी धारा दग्ध धरणीकी छातीपर? तो क्यों पाषाणसे गल-गलके आती है दयामयी स्रोतस्विनी मरुभूमिपर, क्यों फूल खिलते हैं काँटोंके बीच? छलना कर रहे हो तुम मुझसे प्रभु! देखना चाहते हो, मातृभक्ति मेरी, रक्तके समान, हृदय चीरकर फूट निकलती है या नहीं? मेरे ही हृदयकी; हाय, तुमने बलि चढ़ा दी मातृचरणोंमें। वो देखो, हँस रही है मा मेरी स्नेह-परिहाससे। सच है, तू राक्षसी पाषाणी ही है, मा मेरी रक्त-पिपासिनी है। लेगी मा, मेरा रक्त? मिटायेगी सन्तानका जन्म इस जन्मके लिए? भोंक दूँ छुरी अपनी छातीमें? इस सन्तानका रक्त अच्छा लगेगा तुझे? हाँ हाँ, मा मेरी है तो राक्षसी पाषाणी ही!—बुला रहे हो मुझे, गुरुदेव? छलना समझ गया मैं तुम्हारी। भक्त-हृदय-विदारित रक्त चाहते हो तुम! दी थी अभी जो वेदना तुमने, उसपर जननीका स्नेह आ पड़ा है। दुःखसे सुख हो उठा है सौगुना। किन्तु राज-रक्त! छि-छि, भक्ति-पिपासिता माता, उसे कहते हो तुम रक्त-पिपासिनी!

रघुपति—तो बन्द हो बलिदान!

जयसिंह—बन्द हो बलिदान। नहीं, नहीं, गुरुदेव, तुम्हीं जानो भलाई बुराई। सरल भक्तिकी विधि शास्त्रकी विधि नहीं। अपने आलोकसे आँखें कुछ नहीं देख सकतीं, आलोक आता है आकाशसे। प्रभु, क्षमा करो, क्षमा करो दासको। क्षमा करो मूढ़ताकी स्पर्धाको। क्षमा करो वेदनाके आवेशसे निकले-हुए उद्भ्रान्त प्रलापको। बताओ प्रभु, सचमुच क्या राज-रक्त चाहती हैं महादेवी?

रघुपति—हाय, वत्स, आखिर अविश्वास मेरे प्रति ?

जयसिंह—अविश्वास ! हरगिज नहीं । तुम्हें छोड़ दूँ तो विश्वास मेरा खड़ा कहाँ होगा ? वासुकिके मस्तकसे च्युत वसुधाकी तरह शून्यसे शून्यमें हो जायगा लुप्त !—तो राज रक्त चाहती है महामाया ! मैं चढाऊँगा राज-रक्त ! होने न दूँगा भ्रातृहत्या ।

रघुपति—देवताका आदेश पाप नही ।

जयसिह—तो पुण्य है, मैं ही करूँगा उस पुण्यका अर्जन ।

रघुपति—तो सच कहता हूँ वत्स ! तुझे मैं प्राणोंसे भी अधिक चाहता हूँ । बचपनसे पाला है मैंने तुझे मासे भी अधिक स्नेहसे, तुझे नहीं गँवा सकता ।

जयसिह—तो उस स्नेहमें मैं पापकी छाया न पड्ने दूँगा, अभिशाप न पड़ने दूँगा उस स्नेहपर ।

रघुपति—अच्छा अच्छा, पीछे होंगी ये सब बातें ;—जो करना है, कल करेंगे निर्णय उसका । [दोनोंका प्रस्थान

दूसरा दृश्य

मन्दिरमें अपर्णा

गीत

सुनो सुनो, हे जगके वासी,
द्वार खड़ा मन है उपवासी ।

अपर्णा—जयसिह, कहाँ है जयसिंह ! यहाँ तो कोई भी नहीं । तुम कौन खड़ी हो वहाँ, अचल स्थिर-मूर्ति ! नीरव स्तब्ध खड़ी हरण कर रही हो संसारका सार-धन सारा ! ससारके और-सब जिसके लिए दीन कंगाल बने इधर-उधर भटकते फिरते हैं, वह स्वयं आकर तुम्हारे चरणोंमें कर रहा है आत्मसमर्पण ! उससे तेरा क्या प्रयोजन ? क्यों तूने उसे कृपणके धनकी

तरह गाड़ रखा है मन्दिरके नीचे, — दरिद्र इस संसारके सर्व-व्यवहारसे छिपाकर ? जयसिंह, यह पाषाणी क्या सुख देती है तुम्हें, क्या बात करती है तुमसे, — हृदयके गुप्त पात्रमें कौनसी सान्त्वना-सुधा उँड़ेला करती है दिन-रात ? अरे ओ उपवासी चित्त, किसके रुद्ध द्वारपर आ बैठा है तू ?

गीत

सुनो सुनो, हे जगके वासी,
द्वार खड़ा मन है उपवासी।
देख रहा वह सुखका मेला,
नश्वर है इस जगका खेला,
मरता जीता जीव अकेला,
साथ न जाता पैसा-धेला,
दुखदायी है धनकी फाँसी,
सुनो सुनो, हे जगके वासी !

रघुपति—कौन है तू, इस मन्दिरमें ?

अपर्णा—भिखारिन हूं मैं। जयसिंह कहाँ है ?

रघुपति—दूर हो यहाँसे, मायाविनी ! जयसिंहको छीनना चाहती है देवीके हाथसे तू उपदेवी !

अपर्णा—मुझसे देवीको क्या डर ? मैं डरती हूं उससे, कहीं वह मेरा सब-कुछ लुप्त न कर ले।

नश्वर है धन, नश्वर जीवन,
ठाना क्यों फिर हिंसाका रण ?
बीच-बीच बिजली-सी चमके,
खुलती आँखें भीतर मनके।

मधुर बाँसुरी बजती रहती,
'जाना है, न रहना' कहती।
फेंक फेंक पशुताका बाना,
दुख ही दुख हैं इसमें नाना।
जलमें रहती मीन पियासी,
सुनो सुनो, हे जगके वासी!

तीसरा दृश्य

मन्दिरके सामनेका रास्ता

जयसिंह—दूर हो यह चिन्ता-जाल। दूर हो दुबिधा-संशय। चिन्ताके नरकसे कर्म अच्छा, चाहे वह कितना ही क्रूर, कितना ही कठोर क्यों न हो। कामका अन्त है, चिन्ताकी सीमा नहीं कहीं भी। पल-पलमें धारण करती है वह हजारों मूर्ति, भापकी तरह। चारों ओर जितना ही ढूँढ़ती है मार्ग निकलनेका, उतना ही मार्ग हो जाता है लुप्त। एक अच्छा अनेकसे। तुम्हीं सत्य हो गुरुदेव, तुम्हारा ही आदेश सत्य है,—सत्य-पथ है तुम्हारे ही इङ्गितमें। हत्या पाप नहीं, भ्रातृहत्या पाप नहीं, राज-हत्या पाप नहीं! यही सत्य है, यही सत्य है। पाप-पुण्य कुछ भी नहीं, यही सत्य है। दूर हो चिन्ता, दूर हो आत्मदाह, विचार-विवेक दूर हो मनसे।—कहाँ जा रहे हो भाइयो, मेला होगा शायद निशिपुरमें?—कुकी-रमणियोंका नृत्य होगा? मैं भी चलता हूँ।—इस धरातलमें कितना सुख है! निश्चिन्त आनन्दमें नृत्य करती हैं नारियाँ,—मधुराङ्गनाओंका रङ्ग-भङ्ग उच्छ्वसित हो उठता है चारों तरफ, तटप्लाविनी तरंगिनीके समान! निश्चिन्त आनन्दसे सब दौड़ी आती हैं चारों तरफसे,—उठता है गीतोंका फव्वारा, बहता है हास्य-परिहासका झरना, मानो धरणीकी शोभा उज्ज्वल मूर्ति धारण करके मधुर नृत्य कर रही हो! मैं भी चला वहीं।

गीत

जो मुझको ले अपना मान,
उसे करूँ मैं अपना दान।
मन बहलाके
काम भुलाके
लेके साथी अपने साथ,
दान करूँ मैं हाथों - हाथ।
जाते तुम क्या रूप-हाटमें?
मैं पिछड़ा इस पार घाटमें।
हँसी-भरे मुँह देखे जबसे,
हुआ चपल मन मेरा तबसे।
नई भले ही हो पहचान,
तुरत करूँ मैं अपना दान।
बाधाओं के टूटे तार,
मनका बोझा मनका भार
पड़ा रहे सब घरके द्वार,
आ जा री तू क्षणकी बाढ़,
त्वरा बहा ले चल उस पार।
लगा गलेसे, कर ले प्यार।
जो अपनावे अपना जान,
उसे करूँ मैं अपना दान।
इतना सबका आना-जाना,
किसको किसको है पहचाना?
अपनावे जो भाई मान,
मुंहपर जिसके हो मुसकान,

मनमें भी हो मीठी तान,
सदा रहेगी उसकी शान।
कोई भी हो, हो इनसान,
उसे करूँ मैं अपना दान।

दूरसे अपर्णाका प्रवेश

जयसिंह—कौन है वह, अपर्णा इतनी दूर क्यों खड़ी है? सुन रही है, अवाक् होकर, जयसिंह गा रहा है गीत! सब झूठा है, सब प्रवंचना है, इसीसे हँसता हूं, इसीसे गा रहा हूं गीत। वो देखो, इसीसे रास्तेसे जा रहे हैं आदमी निश्चिन्त होकर, इसीसे छोटी-छोटी बातोंको लेकर इतना हँसी-मजाक है, इतना कुतूहल है; इसीसे इतने जतनसे साज-सिंगार करके इतनी बन-ठनके जा रही हैं तरुणियाँ। 'सत्य' अगर होता, तो क्यों होता ऐसा? सहजमें आनन्द इतना बहता क्या यहाँ? तब तो, वेदनासे विदीर्ण वसुन्धरापर विश्वव्यापी व्याकुल क्रन्दन थमकर मूक बना रहता अनन्तकाल तक। वंशी अगर सचमुच ही रोती वेदनासे, तो वह फट जाती, उसका संगीत हो जाता नीरव। झूठी होनेसे ही इतनी हँसी है उसमें! श्मशानकी गोदमें बैठकर खेल, वेदनाके पास सोकर गान और हिंसा-व्याघ्रिनीके तेज नाखूनोंके नीचे चल रहा है, रोजमर्राका काम। 'सत्य' होता, तो क्या ऐसा हो सकता था? हा अपर्णा, हम-तुम कुछ भी सत्य नहीं, यही जानके सुखी होओ, खिन्न विस्मयसे स्निग्ध दृष्टि उठाये क्यों देख रही हो मेरी ओर? आओ सखी, दोनों मिलकर चिरदिन चलते ही चलें हम संसारके ऊपरसे, शून्य आकाशमें दो हलके खण्ड-मेघोंकी तरह।

रघुपतिका प्रवेश

रघुपति—जयसिंह!

जयसिंह—तुम्हें नहीं पहचानता मैं। आज मैं चला जा रहा हूँ,

अपने अदृष्ट-स्रोतमें बहता-हुआ, अपने पथपर, पथके सहस्र पथिक जैसे चले जा रहे हैं ! तुम क्या कह रहे हो मुझसे खड़े होनेके लिए ? नहीं नहीं, जाओ, तुम चले जाओ, मैं भी चला जाऊँ ।

रघुपति—जयसिंह !

जयसिंह—सामने तो पड़ा है पथ सरल सीधा, चला जाऊँगा हाथमें भिक्षापात्र लिये, साथ लेकर अपनी भिखारिनी सखीको । – किसने कहा कि इस संसारका राजपथ दुरूह है, जटिल है ! कैसे भी चलूँ, दिन समाप्त होते ही पहुँच जाऊँगा जीवनके अन्तिम पलकमें । आचार-विचार तर्क-वितर्कका जाल न-जाने कहाँ बिला जायगा ! छोटा-सा यह क्लान्त परिश्रान्त नर-जन्म, इसे सौंप दूँगा धरणीकी गोदमें; दो-चार दिनकी यह समष्टि अपनी, दो-चार दिनकी भूल-भ्रान्ति भय सुख-दुःख हृदयकी क्षीण आशा, दुर्बलता-वश भ्रष्ट भग्न यह जीवन-भार, सब अनन्तकालके हाथ सौंपकर गभीर विश्राम ! यही तो संसार है ! क्या काम शास्त्रके विधानसे, क्या काम गुरुसे ? (कुछ देर स्तब्ध रहनेके बाद)—प्रभु, पिता, गुरुदेव, क्या कह रहा था मैं ! स्वप्नमें था अब तक । यही है वह मन्दिर, वह खड़ा है वृद्ध महावट, अटल कठिन सुदृढ़, निष्ठुर सत्यकी तरह ! क्या आदेश है, देव ? भूला नहीं मैं अपना कर्तव्य है । याद है, क्या करना होगा । यह देखो, (छुरा दिखाकर) तुम्हारे आदेशकी यादको भीतर बाहर दोनों जगह पैना रहा हूं । और भी कुछ आदेश है प्रभु ?

रघुपति—दूर कर दो उस बालिकाको मन्दिरसे ।—मायाविनी, जानता हूं मैं तेरी माया ।—दूर कर दो, दूर कर दो इसे ।

जयसिंह—दूर कर दूँ ? दरिद्र और मन्दिरकी आश्रित है जो मेरी ही तरह; मेरे ही समान, हाय, जो है संगीहीन, अकण्टक पुष्पके समान निर्दोष निष्पाप शुभ्र सुन्दर सरल जो है, सुकोमल वेदनासे जो है कातर, दूर कर देना होगा उसे ? कर दूँगा, करूंगा पालन आदेश तुम्हारा, गुरुदेव ! चली जा

अपर्णा। दया-ममता स्नेह-प्रेम सब झूठा है। मर जा, अपर्णा! संसारके बाहर और कहीं भी कुछ न हो अगर, तो न सही, दयामय मृत्यु तो है ही। चली जा अपर्णा।

अपर्णा—तुम चले आओ जयसिंह, इस मन्दिरको छोड़कर चले आओ, चलो हम दोनों चले जायँ यहाँसे।

जयसिंह—दोनों जने चले जायें! यह तो स्वप्न नहीं। एक स्वप्न समझा था, स्वप्न है यह संसार। इससे हँसा था सुखसे, गीत गाया था आनन्दसे। किन्तु सत्य है यह जो! मत कहो कोई सुखकी बात, न दिखाओ स्वाधीनताका प्रलोभन, बन्दी हूं मैं सत्य-कारागारका!

रघुपति—जयसिंह! समय नहीं यह मीठे आलापका। दूर कर दो इस बालिकाको।

जयसिंह—चली जा अपर्णा, चली जा!

अपर्णा—क्यों जाऊँ?

जयसिंह—यही है नारी-अभिमान तेरा?

अपर्णा—अभिमान कुछ भी नहीं अब। जयसिंह, तुम्हारी वेदना मेरी सम्पूर्ण व्यथासे समस्त गर्वसे ज्यादा है। मुझे कुछ भी अभिमान नहीं।

जयसिंह – तो मैं जाता हूं। तेरा मुंह नहीं देखूँगा, जब तक रहेगी यहाँ। चली जा अपर्णा!

अपर्णा—निष्ठुर ब्राह्मण, धिक्, धिक् तुम्हारे ब्राह्मणत्वपर। क्षुद्र नारी हूं मैं, अभिशाप दिये जाती हूँ तुम्हें, जयसिंह तुम्हारे बन्धनमें हरगिज बँधा नहीं रह सकता। तुम्हारा बन्धन कभी नहीं बाँध सकता जयसिंहको।

[प्रस्थान

रघुपति—वत्स, मुँह उठाओ, बात करो एक बार। प्राणप्रिय प्राणाधिक, मेरे हृदयमें क्या अगाध समुद्र-समान स्नेह नहीं है? और भी चाहता है? मैं आजन्मका बन्धु हूं तेरा, क्षण-भरका मायापाश छूट गया तो उसके लिए इतना क्लेश?

जयसिंह—बस, प्रभु, न सुनाओ स्नेहकी बातें अब। मनमें है केवल कर्तव्य और कर्तव्य! स्नेह-प्रेम तरुलताके पुष्प समान हैं धरणीपर। आते हैं जाते हैं, खिलते हैं झरते हैं, नये-नये स्वप्नोंकी तरह विलीन हो जाते हैं। नीचे रहता है शुष्क रूढ़ पाषाणका स्तूप दिन-रात,—अनन्त हृदयका भार है सब। [प्रस्थान

रघुपति—हाय जयसिंह, इतनी करता हूं साधना तेरी, छलसे बलसे, फिर भी आकृष्ट नहीं कर पाता मन तेरा! क्या हुआ, आता नहीं समझमें कुछ! [प्रस्थान

चौथा दृश्य

मन्दिरके प्राङ्गणमें जनता

गणेश—अबकी बार मेलेमें उतने आदमी नहीं!

अक्रूर—आदमी हों कहांसे? यह तो अब हिन्दुओंका राज्य नहीं रहा। अब तो जैसे नवाबोंका राज्य हो गया! माताकी तो बलि ही बन्द हो गई, फिर मेलेमें आकर लोग करते क्या?

कानू—भई, राजाकी तो ऐसी बुद्धि नहीं थी,—मुझे तो लगता है उनके कोई सिर चढ़ गया है।

अक्रूर—अगर चढ़ा हो तो जरूर कोई मुसलमान भूत चढ़ा है। नहीं तो बलि क्यों उठा देता?

गणेश—मगर, कुछ भी कहो भाई, अब इस राज्यका भला नहीं हो सकता।

कानू—पुरोहितजीने तो खुद कह दिया है कि तीन महीनेके अन्दर ऐसी मरी फैलेगी कि राज्य खतम हो जायगा।

हारू—तीन महीने क्यों, जैसा कि देख रहा हूं, उससे तो मालूम होता है तीन दिन भी टिकना मुश्किल है। देख लो न, अपना माधो ढाई सालसे

बीमार पड़ा-पड़ा जी तो रहा था! पर ज्यों ही बलि बन्द हुई नहीं कि चल बसा!

अक्रूर—वाह रे वाह! उसे मरे तो आज तीन महीने गुजर चुके।

हारू—अरे, तीन महीने ही सही, पर मरा तो इसी साल है।

हीरामणि—अजी, उसकी जाने दो, मेरे जेठौतको लो न, वह चला जायगा यह कौन जानता था! तीन दिनके बुखारमें! जैसे ही बैदकी गोली दी नहीं कि आँखें ऊपरको चढ़ गईं!

गणेश—उस दिन माथुरगञ्जमें आग लग गई, सो एक भी घर नहीं बचा, सब भसम!

चिन्तामणि—अजी, इतना सब क्यों कहते हो, देखो न, इस साल धान इतना मद्दा हो गया कि कोई पूछता ही नहीं। इस साल किसानके भाग्यमें क्या है सो कौन जाने!

हारू—चुप चुप, देख, राजा आ रहे हैं! चलो यहाँसे भाग चलें।

[सबका प्रस्थान

चाँदपाल और गोविन्दमाणिक्यका प्रवेश

चाँदपाल—महाराज, सावधानीसे रहो। चारों ओर आँख-कान बिछाये रहता हूं मैं, राजाका इष्ट-अनिष्ट कुछ भी छिपा नहीं रहता मुझसे। महाराज, तुम्हारी हत्याके लिए गुप्त परामर्श मैंने अपने कानोंसे सुना है।

गोविन्दमाणिक्य—मेरी हत्या! कौन करेगा?

चाँदपाल—कहनेमें संकोच होता है! डर लगता है, कहीं वह निष्ठुर संवाद सचमुचके छुरेसे भी ज्यादा चोट न पहुंचाये!

गोविन्दमाणिक्य—बिना किसी संकोचके कहते जाओ मंत्री! राजाका हृदय सदा तैयार रहता है चोट सहनेके लिए। बताओ, किसने किया है ऐसा परामर्श?

चाँदपाल—युवराज नक्षत्र रायने।

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्रने ?

चाँदपाल—अपने कानोंसे सुना है, महाराज, रघुपति और युवराजमें मन्दिरमें बैठकर सब बातें तय हुई हैं।

गोविन्दमाणिक्य—दो ही क्षणमें तय हो गया आजन्मका बन्धन तोड़ना ! हाय री विधि !

चाँदपाल—जो देवीके आगे ले जाकर चढ़ायेगा तुम्हारा खून—

गोविन्दमाणिक्य—देवीके आगे ! तो फिर इसमें नक्षत्रका कोई दोष नहीं। समझ गया मैं, देवताके नामपर मनुष्यत्व खो देता है मनुष्य ! कोई डर नहीं, तुम जाओ अपने कामसे। सावधान रहूंगा मैं।

[चाँदपालका प्रस्थान

—खून नहीं, फूल लाया हूं, महादेवी ! भक्ति, केवल भक्ति है मेरे हृदयमें। हिंसा नहीं, विभीषिका नहीं, केवल भक्ति। संसारमें दुर्बल-जन बड़े असहाय हैं मा ! बाहुबल बड़ा ही निष्ठुर है, स्वार्थ बड़ा क्रूर है, लोभ बड़ा भयानक है, मा ! अज्ञान बिलकुल ही अन्धा है, गर्व दम्भ बिना किसी दुबिधाके छोटोंको पैरों-तले कुचलते-हुए चले जाते हैं यहाँ। यहाँ स्नेह-प्रेम अत्यन्त क्षीण वृन्तपर लटकते हैं, स्वार्थका स्पर्श लगते ही वे क्षणमें टूटकर गिर जाते हैं धूलमें। तुम भी यदि, जननी, खड्ग उठाओगी, निकालोगी रसना, तो सब अन्धकारमय हो जायगा। भाई आज भाई नहीं, मा ! पतिसे वाम है सती आज ! बन्धु आज शत्रु हो गया, खूनसे भर गया मनुष्यका वासगृह, हिंसा बन गई आज पुण्य, दयाको हो गया निर्वासन ! अब नहीं, अब नहीं, छोड़ो यह छद्मवेश। अब भी क्या नहीं हुआ समय ? अब भी क्या बना ही रहेगा प्रलय-रूप तुम्हारा ? यह जो चारों तरफसे खड्ग उठ रहा है मेरे मस्तकको लक्ष्य करके, माता, यह क्या तेरी ही चार भुजाओंसे ? तो ऐसा ही हो ! वही हो जो तू चाहती है। शायद मेरे रक्तपातसे ही

हिंसानल बुझेगा ! राज-हत्या ! भाईसे भाईकी हत्या ! समस्त प्रजाके हृदयको पहुंचेगी चोट, जगत्‌के समस्त भाइयोंके प्राण उठेंगे रो ! मेरे रक्तसे हिंसाका मिट जायगा मातृवेश, प्रकट होगा राक्षसी आकार। यही यदि दयाका विधान हो तेरा, तो हो, यही हो।

जयसिंहका प्रवेश

जयसिंह—बोल, चण्डी, सचमुच ही क्या राज-रक्त चाहिए तुझे ? बोल जल्दी, अभी बोल, बोल अपने मुँहसे, बोल मानवकी भाषामें, बोल जल्दी, सचमुच ही क्या चाहिए तुझे राज-रक्त ?

नेपथ्यसे—चाहिए !

जयसिंह—तो, महाराज, नाम लो इष्ट-देवताका। काल तुम्हारे सामने खड़ा है !

गोविन्दमाणिक्य—क्या हुआ है तुम्हें जयसिंह ?

जयसिंह—सुना नहीं अपने कानोंसे ? देवीने स्वयं कहा, 'चाहिए !'

गोविन्दमाणिक्य—देवीने नहीं कहा, जयसिंह, कहा है रघुपतिने पीछे छिपे-हुए। परिचित कण्ठस्वर है, तुमने नहीं पहचाना ?

जयसिंह—रघुपतिने कहा है ? पीछे छिपे-हुए ? नहीं नहीं, अब नहीं, बार-बार संशयमेंसे संशयमें अब नहीं कूदा जाता मुझसे। ज्यों ही किनारेपर आता हूं, न-जाने कौन मुझे ढकेल देता है अथाह पानीमें ! जरूर अविश्वास-दैत्य है वह ! अब नहीं। गुरु हो चाहे देवी हो, एक ही बात है। (छुरा निकाल लेता है और फिर फेंक देता है)—फूल ले मा ! ले ले मा ! ले ले फूल, मा ! पाँवों पड़ता हूं,—मात्र इन फूलोंसे ही तृप्त हो जा। अब रक्त नहीं, मा, अब रक्त नहीं। ये भी रक्तके समान ही हैं लाल रंगीन दो जवा-फूल। जगद्धात्री पृथ्वी-माकी छाती फाड़कर खिल उठे हैं, सन्तानके रक्तपातसे व्यथित धराकी स्नेह-वेदनाकी तरह। मैं नहीं

डरता तेरे क्रोधसे ! नहीं दूंगा रक्त मैं ! देखूं, तू क्या करती है ! दिखाती है सुर्ख आँखें मुझे ? उठा अपना खड्ग ! ले आ अपने मसानी दलको। मैं नहीं डरता ! नहीं डरता मैं !

[गोविन्दमाणिक्यका प्रस्थान

—यह क्या हुआ, हाय ! देवी, गुरु, जो-कुछ था मेरा, सबको एक क्षणमें तिलांजलि दे दी मैंने, विश्वमें कुछ भी नहीं रहा मेरा !

रघुपतिका प्रवेश

रघुपति—सब-कुछ ले लिया मैंने। सब बरबाद कर डाला तूने ! क्या किया,—अरे ओ अकृतज्ञ, यह क्या किया तूने !

जयसिंह—दण्ड दो, प्रभु !

रघुपति—सब तोड़-ताड़कर नष्ट कर दिया ! ब्रह्म-शापको लौटा लाया बीच-रास्तेसे ! गुरु-वाक्यका लंघन किया। व्यर्थ कर दिया देवीका आदेश ! अपनी बुद्धिको समझ लिया सबसे बड़ा ! आजन्मका स्नेहका ऋण मेरा इस तरह चुकाया तूने !

जयसिंह—दण्ड दो, पिता !

रघुपति—क्या दण्ड दूं, कौन-सा दण्ड दूं तुझे ?

जयसिंह—प्राणदण्ड।

रघुपति—नहीं। उससे भी बड़ा दण्ड चाहिए। स्पर्श कर देवीके चरण।

जयसिंह—छूता हूं देवीके चरण।

रघुपति—बोल, 'मैं ला दूंगा राज-रक्त, श्रवणकी शेष-रात्रिमें देवीके चरणोंमें।'

जयसिंह—मैं ला दूंगा राज-रक्त, श्रावणकी शेष रात्रिमें देवीके चरणोंमें।

रघुपति—जाओ अब।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

मन्दिरमें जनता, रघुपति और जयसिंह

रघुपति—तुमलोग सब यहाँ किसलिए आये हो?

जनता—देवीके दर्शन करने, देवीके दर्शन करने!

रघुपति—अच्छा! देवीके दर्शन करने! अभी तक तुमलोगोंकी आँखें मौजूद हैं,—बाप-दादोंका भाग्य समझो! देवी हैं कहाँ? देवी इस राज्यको छोड़के चली गईं। तुमलोग अपनी देवीको रख कहाँ सके? चली गईं देवी, चली गईं।

जनता—सत्यानास हो गया! यह क्या कह रहे हैं महाराज! हमसे क्या कसूर बन पड़ा?

निस्तारिणी—मेरा बहनौत बीमार था इसलिए मैं इधर कई दिनोंसे पूजा चढ़ाने नही सकी महाराज!

गोवर्धन—मैंने तो बहुत दिनोंसे तय कर रखा था कि माको दो-दो बकरे चढ़ाऊँगा; इतनेमें राजाने बली ही बन्द कर दी, इसमें मेरा क्या दोष?

हारू—अरे उस गन्धमादनको देख लो न,—मासे मन्नत करके बेईमानी मनमें लाया, सो आज तक पड़ा ही है खाटपर। महाजन है तो हमलोगोंका है, मासे चालबाजी थोड़े ही चल सकती है!

अक्रूर—चुप भी रहो तुमलोग! फजूलमें हल्ला मचा रक्खा है। हाँ, महाराज, यह तो बतलाइये, मा क्यों चली गईं, हमसे क्या कसूर बन पड़ा?

रघुपति—माके लिए एक बूँद खून तक नहीं दे सके तुमलोग,—यही तो भक्ति है तुमलोगोंकी?

जनतामेंसे बहुतसे—राजाका हुक्म था, हम क्या करते?

रघुपति—कौन है राजा? माका सिंहासन क्या राजाके सिंहासनके नीचे है! तो तुमलोग इस मातृहीन राज्यमें राजाको लेकर ही रहो, देखूंगा मैं, राजा कैसे तुमलोगोंकी रक्षा करता है।

[जनता डर जाती है और आपसमें कानाफूसी करती है]

अक्रूर—चुप रहो, चुप रहो सब।—महाराज, सन्तानसे अगर कोई कसूर बन पड़ा हो, तो मा उसे दण्ड दे,—लेकिन एकदम छोड़के चले जाना, यह तो माके जैसा काम नहीं हुआ। अब हमें यह बताओ, महाराज, क्या करनेसे माको लौटाया जा सकता है?

रघुपति—तुमलोगोंका राजा जब राज्य छोड़कर चला जायगा, मा तभी इस राज्यमें पदार्पण कर सकती हैं।

[निस्तब्ध होकर सब एक दूसरेका मुँह ताकते हैं]

रघुपति—तो तुमलोग देखना चाहते हो? यहाँ आओ। बहुत दूरसे बड़ी आशासे तुमलोग माके दर्शनके लिए आये हो,—आओ, दिखाऊँ तुम्हें माका रूप!

[मन्दिरका द्वार खुल जाता है; और प्रतिमाकी पीठ दिखाई देती है]

सबके सब—यह क्या! माका मुँह किधर है?

अक्रूर—अरे अभागो, मा हमसे विमुख हो गई हैं।

सबके सब—ओ मा, मा, इधर घूम, मा! हमारी तरफ घूमके खड़ी हो मा! घूमके खड़ी हो। बच्चोंका कसूर माफ कर दे, मा! कहाँ है मा, कहाँ है तू? हमलोग तुझे वापस लायेंगे ही, हरगिज नहीं छोड़नेके। नहीं चाहिए हमें राजा। जाने दो राजाको, मरने दो।

जयसिंह (रघुपतिके पास आकर)—प्रभु, मैं क्या एक शब्द भी नहीं कह सकता?

रघुपति—नहीं।

जयसिंह—सन्देहका क्या कोई भी कारण नहीं?

रघुपति—नहीं।

जयसिंह—जो भी कुछ हो रहा है, सबपर विश्वास करना होगा ?

रघुपति—हाँ।

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा (जयसिंहके बगलमें आकर)—जयसिंह ! आओ जयसिंह, जल्दी चले आओ इस मन्दिरको छोड़कर।

जयसिंह—हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है मेरा !

[रघुपति, अपर्णा और जयसिंहका प्रस्थान

राजाका प्रवेश

प्रजागण—रक्षा करो, महाराज, हमारी रक्षा करो। माको लौटाओ !

राजा—सुनो मेरी बात, ध्यानसे सुनो सब ! माको मैं वापस बुलाकर ही दम लूंगा।

प्रजागण—जय हो महाराजकी, जय हो !

राजा—एक बात पूछता हूं मैं तुमलोगोंसे, तुमलोगोंने क्या माके पेटसे जन्म नहीं लिया ? माताओ, तुमलोगोंने तो अनुभव किया है अपने कोमल हृदयमें मातृस्नेह-सुधाका ! बताओ तो, मा क्या नहीं है ? संसारमें सबसे बड़ी, सबसे पुरानी, सबसे पवित्र चीज है माका प्यार। सृष्टिके प्रथम क्षणमें अकेला एक मातृस्नेह बैठा जाग रहा था, तरुण विश्वको गोदमें लिये, आँखें झुकाये। आज भी वह पुराना मातृस्नेह बैठा है धीरजकी प्रतिमा बनकर। उसने कितने उपद्रव सहे हैं, कितना शोक सहा है, कितनी वेदना सही है, कितना अनादर सहा है, कोई ठीक है ! आँखोंके सामने उसने देखा है भाई-भाईमें कितना रक्तपात होते, देखी है कितनी निष्ठुरता, कितना अविश्वास ! वाक्यहीन वेदना छातीमें लिये-हुए फिर भी वह जननी ज्योंकी त्यों बैठी है जहाँकी तहाँ, कमजोरोंके लिए गोद बिछाये, बिलकुल ही जो असहाय हैं उनके

लिए सम्पूर्ण हृदय खोले। आज ऐसा क्या अपराध बन गया हमलोगोंसे जिससे वह असीम स्नेह चला गया संसारको चिरमातृहीन अनाथ बनाकर ! प्रजागण, माताओ, खुलासा बताओ, ऐसा क्या अपराध हो गया हमसे ?

कोई-कोई—माकी वलि जो बन्द कर दी ! माकी पूजा जो बन्द हो गई !

राजा—बन्द कर दी है वलि, इसी अभिमानसे विमुख हो गई है माता ! महामारी फैल गई, अकाल पड़ गया, आग लगने लगी, रक्तपात शुरू हो गया ! मा हमारी ऐसी है ! क्षण-क्षणमें क्षीण शिशुको दूध पिलाकर जिलाती रहती है जो माता, सो क्या उसका रक्त पान करनेके लोभसे ? माके ऐसे अपमानको हृदयमें स्थान देते-हुए क्या आजन्मके मातृस्नेहकी स्मृतिपर जरा भी चोट नहीं आई तुम्हारे ? याद नहीं आया माका करुण मुख ?—'खून चाहिए' 'खून चाहिए' कहके गरज रही हैं जननी ! बेजबान बेबस कमजोर जीव प्राणोंके डरसे थर-थर काँप रहे हैं, और दयाहीन समर्थ मनुष्य रक्तकी मत्तंतामें रहे हैं नाच ! क्या यही हमारी माका परिवार है ? हे माके पुत्रो, सोचो, विवेकसे विचारो जरा, यही क्या माकी स्नेह-छबि है ?

प्रजागण—मूरख हैं हम, कुछ समझ नहीं सकते।

राजा—समझ नहीं सकते ! दो दिन हुए संसारमें आये जिस बच्चेको, कुछ भी नहीं जानता जो, वह भी अपनी माको समझता है। वह भी समझता है, डर लगे तो उसके लिए माकी गोद है निर्भय, भूख लगे तो दूध है माके स्तनोंमें। कोई तकलीफ हो तो वह रोता है माके मुँहकी ओर देखकर। फिर, तुमलोग ऐसे क्या नासमझ हो गये, ऐसे क्या भूलभुलैयामें पड़ गये कि माको भूल गये ? इतना भी नहीं समझ सकते कि मा दयामयी हैं ? इतना भी नहीं समझ पाते कि जीव-जननीकी पूजा जीवोंके खूनसे नहीं होती ? उनकी पूजा होती है प्रेमसे ! इतना भी नहीं समझते कि जहाँ डर है वहाँ मा नहीं, जहाँ हिंसा है वहाँ मा नहीं, जहाँ रक्त है वहाँ मा नहीं,—वहाँ सिर्फ माके आँसू हैं। मेरे प्यारे भाइयो, स्नेहमयी मा-बहन-बेटियो,

कैसे दिखाऊँ मैं तुम्हें, कैसी वेदना देखी है मैंने माके मुँहपर ! कैसे समझाऊँ तुम्हें कि कैसी कातर दया थी उन आँखोंमें ! कैसे अभिमान-तिरस्कारपूर्ण आँसू थे उन आँखोंमें ! दिखा सकता अगर, उसी क्षण पहचान जाते अपनी माको तुमलोग। स्वयं दया आई जब दीन वेशमें मन्दिरके द्वारपर, अपने आँसुओंसे माके सिंहासनसे कलंकका दाग मिटानेके लिए, तब माता चली जायेंगी रूठकर हमारे अपराधपर ! यही सुविचार किया तुमलोगोंने माके प्रति ?

अपर्णाका प्रवेश

प्रजागण—देखो, देखो महाराज, खुद देखो भीतर जाकर, माने मुँह फेर लिया है आज सन्तानोंसे।

अपर्णा (मन्दिरके भीतर जाती हुई)—मुँह फेर लिया है माने ? आ तो मा, देखूं, आ तो सबके सामने एक बार। (प्रतिमाको फेरकर)—यह देखो, मा देख रही है सन्तानका मुँह !

सबके सब—माने देखा हमारी ओर ! मा ! मा ! जय हो, जय हो, माकी जय हो ! मा, तेरी जय हो !

सब मिलके गाते हैं

जय जय, मा, तेरी हो जय !
दूर हुआ अब सबका भय।
माने छोड़ा अपना रोष
माफ किया हम सबका दोष,
मातृ-हृदय है करुणा-कोष,
हुआ आज सबको सन्तोष।
जय जय, मा, तेरी हो जय !
कर दे हम सबको निर्भय।

जयसिंह और रघुपतिका प्रवेश

जयसिंह—सच बताओ प्रभु, क्या यह तुम्हारा ही काम था ?

रघुपति—सच नहीं तो क्या झूठ कहूँगा ? मुझे किसीका डर पड़ा है ? मेरा ही है यह कार्य। प्रतिमाका मुँह फेर दिया था मैंने। क्या कहना चाहते हो, कहो ! आज तुम गुरुके भी गुरु हो गये, तिरस्कार करने आये हो मेरा ? क्या उपदेश देना चाहते हो तुम मुझे, दो !

जयसिंह—कुछ नहीं कहना मुझे।

रघुपति—कुछ नहीं ? कोई भी प्रश्न नहीं तुम्हारा मुझसे ? मनमें सन्देह उत्पन्न होनेपर उसके समाधानके लिए गुरुके उपदेशकी जरूरत नहीं तुम्हें ? गुरु-शिष्यके मनमें इतना बड़ा विच्छेद हो गया ? रे मूढ़, तो सुन ! सचमुच ही विमुख हो गई हैं देवी,—पर इससे प्रतिमाका मुँह नहीं फिर जाता। मन्दिरमें जो रक्तपात होता है, उसे देवी ही पान करती हैं, प्रतिमाके मुँहमें नहीं जाता वह। देवताका असन्तोष प्रतिमाके मुँहसे प्रकट नहीं होता। किन्तु मूर्खोंको कैसे समझाओगे ? उनकी आँखें ऐसी चीज देखना चाहती हैं जो दीख नहीं सकती। इसीसे, मिथ्यासे सत्य समझना पड़ता है उन्हें। मूर्ख, सत्य हमारे-तुम्हारे हाथ नहीं। 'सत्यकी प्रतिमा' सत्य नहीं, वाक्य सत्य नहीं, लिपि सत्य नहीं, मूर्ति सत्य नहीं, विचार सत्य नहीं। सत्य कहाँ है, कोई नहीं जानता; कोई नहीं पाता जिसे, वही सत्य कोटि मिथ्याके रूपमें फट पड़ा है चारों तरफ। सत्यने इसीसे नाम पाया है महामाया, जिसका अर्थ है महामिथ्या ! सत्य-महाराज बैठा रहता है राज-अन्तःपुरमें; सैकड़ों 'मिथ्या' प्रतिनिधि हैं उसके, जो चारों तरफ दौड़-धूप करते रहते हैं। सोचा करो तुम बैठे-बैठे, इसी तरह माथेपर हाथ रखकर। मैं चला, मुझे बहुत काम है।

जयसिंह—जो तरंग किनारे लगा देती है वही खींचे लिये जा रही है अथाह पानीमें ! सत्य नहीं है, सत्य नहीं है, नहीं है सत्य ! सब झूठा है,

सब झूठ है, झूठ है सब! देवी नहीं है प्रतिमाके अन्दर, तो कहाँ है वह? कहीं भी नहीं वह, कहीं भी नहीं, देवी नहीं है। धन्य धन्य धन्य है मिथ्या तुमको!

दूसरा दृश्य

राज-प्रासादमें गोविन्दमाणिक्य और चाँदपाल

चाँदपाल—प्रजागण कर रहे हैं कुमन्त्रणा। मुगल-सेनापति आ रहा है आसामकी तरफ चढ़ाई करने। फौज पास आ पहुँची है, दो-तीन दिनका रास्ता और रह गया है। प्रजाकी तरफसे प्रस्ताव जा रहा है, महाराजको सिंहासनसे हटानेके लिए।

गोविन्दमाणिक्य—मुझे हटाना चाहते हैं? मुझपर इतना असन्तोष क्यों?

चाँदपाल—महाराज, सेवकका विनय रखिये, – निष्ठुर प्रजाको अगर पशु-रक्त इतना ही अच्छा लगता है तो दो उन्हें पशु-बध करने! उनकी राक्षसी प्रवृत्ति पशुओंपर ही चरितार्थ होने दो। हमेशा मुझे डर लगा रहता है, कब क्या हो जाय!

गोविन्दमाणिक्य—मैं जानता हूं, चाँदपाल, कि डर है। राज-कार्यका भी भार है तुमपर। समुद्र भीषण है; फिर भी नाव किनारे लगानी ही पड़ेगी। प्रजाका दूत क्या चला गया मुगलोंके पास?

चाँदपाल—हाँ, अब तक पहुँच गया होगा।

गोविन्दमाणिक्य—चाँदपाल, तो तुम जाओ जल्दी, इसी वक्त,—मुगलोंके शिविरके आस-पास रहना, और जब जैसी खबर मिले, मुझे समाचार देते रहना।

चांदपाल—महाराज, खूब सावधानीसे रहना यहाँ! भीतर-बाहर सर्वत्र शत्रु हैं महाराजके। सर्वदा सावधान रहना राजन्! मैं जाता हूं।

[प्रस्थान

गुणवतीका प्रवेश

गोविन्दमाणिक्य—प्रिये, बड़ा शुष्क है यह संसार! बड़ा शून्य है! भीतर-बाहर सर्वत्र शत्रु हैं। आओ प्रिये, क्षण-भर मेरे पास आकर बैठो अपने चेहरपर हँसी लिये, प्रसन्नवदने! अपने प्रेम-भरे नेत्रोंसे देखो एक बार मेरी तरफ। प्रेमहीन अन्धकार, षड्यंत्र, संकट, विद्वेष सबके ऊपर हो तुम्हारा सुधामय आविर्भाव, घोर निशीथके शिखरपर निर्निमेष चन्द्रकी तरह! प्रियतमे, निरुत्तर क्यों हो? मेरे अपराधके विचारका क्या यही समय है? तृषार्त हृदय मेरा इस मरुभूमिमें मुमूर्षुकी तरह सुधापात्र हाथमें लिये आया है तुम्हारे पास, क्या उसे रीते-हाथ लौटा दोगी? [गुणवतीका प्रस्थान

नक्षत्र रायका प्रवेश

नक्षत्र राय (स्वगत)—जहाँ भी जाता हूँ, सब कहते हैं, 'तुम राजा होंगे!' 'राजा होंगे।' बड़े आश्चर्यकी बात है। अकेला बैठा होऊँ तो भी सुना करता हूँ 'तुम राजा होंगे।' कानोंमें मानो तोतोंने घोंसला बना लिया है, एक ही रट लगाये हुए हैं, 'राजा होंगे!' अच्छी बात है, राजा होऊँगा; लेकिन राज-रक्त, सो क्या तुमलोग ला दोगे?

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र! (नक्षत्र चौंक पड़ता है)—नक्षत्र! मुझे मारोगे तुम? बताओ, सच बताओ, मारोगे मुझे? हत्या करोगे मेरी? क्या यही बात ध्वनित हो रही है तुम्हारे कानोंमें दिन-रात? क्या इसी संकल्पको मनमें लिये-हुए तुमने हँस-हँसके बातें की हैं मुझसे? बार-बार पाँव छूकर प्रणाम किया है और आशीर्वाद लिया है, मध्याह्नमें एक अन्नमेंसे भाग करके भोजन किया है तुमने मेरे साथ, तब क्या यही संकल्प था

तुम्हारे मनमें ? मेरी छातीमें छुरा भोंकोगे ? अरे ओ भाई मेरे, इसी छातीसे लगाया था मैंने तुझे, पहले-पहल जब तेरे पाँव पड़े थे इस कठिन मर्त्यभूमिपर ! इसी छातीसे लगाया था तब तुझे जिस दिन हम दोनोंकी जननी तेरे सिरपर स्नेहका हाथ रखकर चली गई थी धराधामको शून्य करके ! आज, वही तू, उसी छातीमें भोंकेगा छुरी ! एक ही रक्तधारा बह रही है हम दोनोंकी देहमें, जो धारा पिता-पितामहोंसे बहती चली आई है हमेशासे भाइयोंकी शिराओंमें। उस शिराको छिन्न करके उसका तू रक्त बहायेगा धरतीपर ! यह ले, बन्द किये देता हूँ द्वार, यह ले मेरी तलवार, ले मार, खोले देता हूँ छाती अपनी, भोंक दे ! पूरी हो तेरी मनोकामना।

नक्षत्र राय—क्षमा करो। क्षमा करो भाई, क्षमा करो।

गोविन्दमाणिक्य—आओ वत्स, लौट आओ, अपनी उसी छातीसे आ लगो। क्षमा माँग रहे हो ? जब यह संवाद सुना था तभी मैंने क्षमा कर दिया है तुम्हें। क्षमा न करनेमें मैं जो असमर्थ हूं।

नक्षत्र राय—रघुपति दिया करता है मुझे बुरी सलाह। मुझे बचाओ उसके हाथसे।

गोविन्दमाणिक्य—कोई डर नहीं, भाई, भाई तुम्हारी रक्षा करेगा, तुम निश्चिन्त रहो।

तीसरा दृश्य

राज-अन्तःपुरमें गुणवती

गुणवती—इतना किया, फिर भी कुछ नहीं ! आशा की थी मन-ही-मन कि कठिन बनी रहूँ कुछ दिन तो आप ही पकड़ाई देने आयेंगे प्रेमकी प्याससे ! इतना अहंकार था मनमें। मुँह फेरे रही, बात नहीं की, आँसू नहीं निकाले, सिर्फ सूखा क्रोध, बार-बार अनादर अवहेलना, सब-कुछ किया, इतने दिन बीत गये, फिर भी कुछ नहीं ! सुना है नारीका रोष पुरुषोंके लिए

मात्र एक शोभा है आभामय मणिकी दीप्तिके समान। धिक्, धिक् है उस शोभाको! वह बज्रके समान होता कहीं, तो टूट पड़ता प्रासादपर, छूट जाती निद्रा राजाकी, चूर्ण हो जाता राजाका अहंकार, पूर्ण होती रानीकी महिमा। मैं रानी हूँ! क्यों पैदा हुई यह झूठी कल्पना, झूठा विश्वास! हृदयकी अधीश्वरी हूँ मैं तुम्हारी, क्यों सुनाया था प्रतिदिन मन्त्र यह मेरे कानोंको? यह क्यों नहीं कहा मुझसे कि मैं क्रीतदासी हूँ, राजाकी, किंकरी हूँ, रानी नहीं, तो फिर सहसा आज ऐसा आघात, ऐसा पतन तो नहीं सहना पड़ता।

ध्रुवका प्रवेश

—कहाँ जा रहा है तू?

ध्रुव—राजाने बुलाया है मुझे। [प्रस्थान

गुणवती—राजाका हृदय-रत्न यही है वह बालक। ओरे बच्चे, तूने ही चुरा लिया है वह आसन जो मेरी सन्तानके लिए सुरक्षित था। मेरे बच्चोंके आनेके पहले ही तूने उनके पितृस्नेहपर कब्जा कर लिया है। राज-हृदयके सुधापात्रसे तूने ही ले ली प्रथम अंजलि! राजपुत्र आकर तेरा ही प्रसाद पायेंगे क्या, ओरे राजद्रोही! मा, महामया मा, यह कैसा न्याय तुम्हारा! इतनी सृष्टि, इतना खेल है तेरा,—खेल-ही-खेलमें दे दे मुझे एक नन्हा-सा लाल! दे मा जगज्जननी, सिर्फ नन्हा-सा एक बच्चा, जिससे मेरी गोद भर जाय। तुझे जो अच्छा लगता हो, वही दूंगी मैं तेरे चरणोंमें।

नक्षत्र रायका प्रवेश

—नक्षत्र, कहाँ चले? वापस क्यों जा रहे हो? इतना डर किसका तुम्हें? मैं नारी हूँ, अस्त्रहीन, बलहीन, निरुपाय, असहाय,—मैं क्या इतनी भीषण हूँ जो इतना डरते हो मुझसे?

नक्षत्र राय—नहीं, नहीं, मुझे न बुलाओ।

गुणवती—क्यों, क्या हुआ ?

नत्तत्र राय—मैं राजा नहीं होऊंगा।

गुणवती—न होगे तो न सही। इतनी उछल-कूद क्यों ?

नत्तत्र राय—चिरकाल जीते रहें राजा, भगवान करें मैं युवराज रहकर ही मरूं।

गुणवती—सो ही मरो। जल्दी मरो। पूरा हो मनोरथ। मैं क्या तुम्हारे पाँवों पड़कर प्रार्थना कर रही हूँ कि तुम जिन्दा रहो ?

नक्षत्र राय—तो क्या कहना चाहती हो, कहो !

गुणवती—जिस चोरने चुरा रखा है तुम्हारा मुकुट, उसे हटा दो। समझे कुछ ?

नक्षत्र राय—सब समझ गया, सिर्फ इतना-भर नहीं समझा कि कौन है वह चोर !

गुणवती—वही बालक ध्रुव है वह चोर। बढ़ रहा है राजाकी गोदमें, दिनपर दिन ऊँचा होता जा रहा है मुकुटकी तरफ।

नक्षत्र राय—हूँ ! अब समझा ! मुकुट देखा तो है उसके सिरपर। मैंने उसे खेल समझा था।

गुणवती—मुकुटसे खेल ! बड़ा काला खेल है वह। अभीसे मिटा दो उस खेलको, नहीं-तो· किसी दिन तुम्हें ही बनना पड़ेगा खेलका खिलौना, समझे !

नत्तत्र राय—समझा ! यह तो अच्छा खेल नहीं।

गुणवती—आज आधी रातको, गुप्तरूपसे ले जाकर उसे देवीके चरणोंमें चढ़ा दो मेरे नामसे। उसके रक्तसे शान्त हो जायगा देवीका क्रोधानल, स्थायी होगा सिंहासन इस राजवंशका ; पितृगण गायेंगे कल्याण तुम्हारा। समझे कुछ ?

नत्तत्र राय—समझा।

गुणवती—तो जाओ। जो कहा सो करो। याद रखना, मेरे नामसे चढ़ाना देवीके चरणोंमें !

नक्षत्र—ऐसा ही होगा। मुकुटसे खेल! यह कैसा सत्यानासी खेल! समझ गया सब,—देवी सन्तुष्ट होंगी, राज्यकी रक्षा होगी, और, और पितृगण,—सब समझ गया मैं।

चौथा दृश्य

मन्दिरके सोपानपर जयसिंह

जयसिंह—देवी, हो तुम, हो! रहो, रहो देवी, रहो तुम! इस असीम रजनीके शेष प्रान्त तक कणामात्र होकर भी अगर कहीं हो तुम, तो वहींसे क्षीणतम स्वरमें जवाब दो, कह दो मुझसे, "वत्स, हूं मैं।"—नहीं है, नहीं है, नहीं है, देवी नहीं है। नहीं है? दया करो, देवी, रहो। अरी ओ मायामयी मिथ्या, दया कर, दया कर जयसिंहपर, सत्य हो उठ तू! आशैशव भक्ति मेरी, आजन्मका प्रेम मेरा, तुझे प्राण नहीं दे सकता? इतनी मिथ्या है तू? अपना यह जीवन तूने किसे दे डाला जयसिंह! तूने अपना सब-कुछ फेंक दिया इस सत्यशून्य दयाशून्य मातृशून्य सर्वशून्य रसातलमें!

अपर्णाका प्रवेश

—अपर्णा, फिर आ गई तू? मन्दिरसे निकाल बाहर किया तुझे, फिर भी तू दिन-रात आस-पास चारों तरफ घूमती फिरती है, दारिद्रके मनमें सुखकी दुराशाके समान? सत्य और मिथ्यामें प्रभेद सिर्फ इतना ही है। मिथ्याको रखता हूं मन्दिरके भीतर बड़े जतनसे, फिर भी वह रहते-हुए भी नहीं रहता; और सत्यको निकाल बाहर करता हूं मन्दिरसे, अनादर अपमानके साथ, तो भी वह लौट-लौट आता है! अपर्णा, अब मत जा तू, तुझे अब मैं नहीं निकालूंगा। आ, यहाँ बैठें दोनों। बहुत रात हो गई है। कृष्णापक्षका चाँद उठ रहा है पेड़की ओटमेंसे। चराचर निद्रामें मग्न

है ; सिर्फ हम दोनों नहीं सोये। अपर्णा, विषादमयी अपर्णा, तुझे भी क्या धोखा दे गया है मायाका देवता ? देवताकी जरूरत क्या है हमें ? क्यों हम बुला लाते हैं उसे अपनी छोटी-मोटी सुखकी घर-गृहस्थीमें ? वे क्या हमारी व्यथाको समझते हैं ? पाषाणकी तरह केवल देखते रहते हैं ;— और हम, हम अपने भाईको प्रेमसे वंचित करके, उस प्रेमको चढ़ाते हैं देवताके चरणोंमें ! हमारा वह प्रेम क्या उनके कोई काम आता है ? इस सुन्दरी सुखमयी धरणीसे मुंह फेरकर हम देवताकी ओर देखा करते हैं, वह किधर देखता है ? उसके लिए क्षुद्र हो सकती है, तुच्छ हो सकती है, किन्तु हमारे लिए तो धरणी मा है। उसकी दृष्टिमें कीट-सम हों तो हुआ करें, किन्तु हमारे लिए तो भाई भाई ही है ! उपेक्षासे सबको अपने अन्धे रथके नीचे पीसता हुआ चला जाता है, फिर भी, वे दलित उपेक्षित हैं तो हमारे ही अपने। आओ अपर्णा, भयहीन देवता-हीन होकर हम सब और-भी पास आकर प्रेमसूत्रमें बँधके रहें। — खून चाहिए ? स्वर्गका ऐश्वर्य त्यागकर क्या इसीलिए आई है इस दरिद्र धरतीपर ? वहाँ मानव नहीं हैं, जीव नहीं हैं, खून नही है, ऐसा कुछ भी नहीं वहाँ जो व्यथासे फड़फड़ाये ! इसीसे स्वर्गसे हो गई है अरुचि तुझे ? राक्षसी, यहाँ आई है शिकार खेलने, जहाँ निर्भय विश्वास-सुखसे नीड़ बनाकर रह रहे हैं मानवके छोटे-छोटे परिवार ? अपर्णा, बाले, देवी नही है ! मै कहता हूँ, देवी नहीं है !

अपर्णा—जयसिंह, तो चले आओ, इस मन्दिरको छोड़कर, चले आओ मेरे साथ।

जयसिंह—चलूंगा, चलूंगा, इसे छोड़ चलूंगा। हाय री अपर्णा, जाना ही होगा मुझे। फिर भी, जिस राज्यमें आजन्म किया है वास, उसका राज-कर चुकाकर तब कहीं जाना होगा मेरा। जाने दो इन-सब बातोंको। देखो उधर, गोमतीकी शीर्ण जलरेखा ज्योत्स्नालोकसे पुलकित हो उठी है,— कल-ध्वनि उसकी बार-बार एक ही बात दुहरा रही है। आकाशमें क्षीण अर्धचन्द्र थककर पीला पड़ गया है, ज्यादा रात जगनेसे मानो उसकी आँखें मुँदी जा रही हैं नींदके भारसे। सुन्दर है जगत् ! हा, अपर्णा, ऐसी रातमें

देवी नहीं है ! जाने दो देवीको। अपर्णा, जानती है तू, सुख-भरी सुधा-भरी बात कोई ? बस, वही बात सुना, जिसके सुनते ही क्षणमें अतलमें मग्न होकर भूल जाऊं जीवनका ताप, और मरण कितना माधुर्यमय है उसका पहलेसे ही मिल जाय स्वाद। अपर्णा, आज ऐसी कोई बात सुना तू, अपने मधुकण्ठसे, अपने मधुमय नेत्रोंसे मेरे मुंहकी ओर देखती-हुई, इस जनहीन स्तब्ध निशीथ रजनीमें, इस विश्वजगतकी नींदमें, बोल री अपर्णा, जिसके सुननेसे ऐसा लगने लगे कि चारों ओर और-कुछ भी नहीं, केवल प्रेम-ही-प्रेम बह रहा है, पूर्णिमाकी सुप्त-रजनीमें रजनीगन्धाके सौरभ-सा !

अपर्णा—हाय, जयसिंह, कहते नहीं बनता कुछ, समझती-भर हूं, मनमें हैं कितनी बातें !

जयसिंह—तो और-भी पास आ, मनसे मनमें आने दे बातोंको। – यह क्या कर रहा हूं मैं ! अपर्णा, अपर्णा, चली जा तू मन्दिर छोड़कर। जा, जा, गुरुका आदेश है !

अपर्णा—जयसिंह, निष्ठुर न होओ तुम। बार-बार न लौटाओ मुझे। कितना सहा है मैंने, अन्तर्यामी ही जानते हैं।

जयसिंह—तो, मैं जाता हूं। यहाँ एक क्षण भी नहीं। (कुछ दूर जाकर वापस आ जाता है) अपर्णा, निष्ठुर हूं मैं ? यही क्या रहेगा तेरे मनमें, 'जयसिंह निष्ठुर है, कठिन-कठोर है !' कभी भी क्या हँसकर नहीं की बात मैंने ? कभी भी क्या बुलाया नहीं अपने पास मैंने तुझे ? कभी भी क्या गिराये नहीं आँसू तेरे आँसू देखकर ? अपर्णा, वे बातें न आयेंगी याद कभी ? सिर्फ यही याद जागती रहेगी मनमें तेरे, 'जयसिंह निष्ठुर है, पाषाण है ?' जैसी पाषाण है मन्दिरकी मूर्ति वह, देवी कहता था जिसे ? हाय देवी, तू अगर देवी होती, तू अगर समझती मेरे इस अन्तर्दाहको !

अपर्णा—बुद्धिहीन व्यथित है यह क्षुद्र नारी-हृदय, क्षमा करो इसे। बस, अब चले आओ, यही समय है ; – जयसिंह, आओ, चलो, हम-तुम और-कहीं चले चलें इस मन्दिरको छोड़कर।

जयसिंह—रक्षा करो, अपर्णा, करुणा करो। दया करके मुझे छोड़कर

चली जाओ। एक काम बाकी है इस जीवनमें, वही हो मेरा प्राणेश्वर, उसका स्थान तुम न छीनो। [तेजीसे प्रस्थान

अपर्णा—बार-बार सहा है, सहस्र बार सहा है, आज क्यों नहीं सहा जाता? आज क्यों टूटे जा रहे हैं प्राण मेरे!

पाँचवाँ दृश्य

मन्दिरमें नक्षत्र राय, रघुपति और सोता-हुआ ध्रुव

रघुपति—रो-रोकर सो गया है। जयसिंह भी आया था एक दिन इसी तरह मेरी गोदमें, मातृपितृहीन शैशव लेकर अपना। उस दिन इसी तरह रोया था वह, अपने चारों तरफ नया दृश्य देखकर, हताश्वास श्रान्त शोकमें इसी तरह सो गया था संध्या होनेपर, यही देवीके चरणोंके पास। इसे देख कर उसका वह शिशु-मुख, वही शिशु-क्रन्दन, याद आता है!

नक्षत्र राय—महाराज, देर न करो अब, डर लगता है, कहीं राजा न आ जायें खबर पाकर!

रघुपति—कैसे खबर पायेगा राजा? दसों दिशाए घिरी-हुई हैं निशीथकी निद्रासे।

नक्षत्र राय—एक बार मालूम हुआ था मुझे कि कोई छाया आ रही है मेरे पीछे-पीछे!

रघुपति—अपने ही भयकी छाया थी वह।

नक्षत्र राय—और कानोंमें सुनाई दिया था क्रन्दनका स्वर!

रघुपति—अपने हृदयका! दूर हो निरानन्द। आओ, पान करें कारण-सलिल! (सुरा पीना) मनका भाव जब तक मनमें रहता है, तभी तक वह दिखाई देता है बड़ा! कार्य करते समय वह छोटा हो जाता है, जैसे बहुत-सी भाप गलकर पानीकी एक बूंद बन जाती है। कुछ नहीं, कुछ नहीं, सिर्फ

एक क्षणका काम है। बस, उतनी ही देरकी बात है जितनी देर प्रदीपकी लौ बुझानेमें लगती है। नीदमेंसे क्षण-भरमें विलीन हो जायगी गाढी नींदमें इसकी प्राण-रेखा, एक ही क्षणमें, श्रावणकी निशीथमें बिजलीकी झलक-सी। केवल बज्र उसका हमेशाके लिए बिंधा रहेगा राज-दम्भमें! आओ, आओ युवराज, म्लान हुए बैठे क्यो हो एक किनारेसे स्तब्ध मूक बने, बुझे-हुए दीप-से,– मुसकान नहीं चेहरेपर! आओ, पान करो आनन्द-सलिल!

नक्षत्र राय—बहुत देर हो गई, महाराज! मै कहता हूं, आज रहने दो। कल होगी पूजा।

रघुपति—देर हो गई! हाँ हाँ, देर तो हो ही गई है। रात खतम होनेको है।

नक्षत्र राय—सुनो, सुनो, किसीके आनेकी आहट है, सुनो!

रघुपति—कहाँ? मुझे तो नहीं सुनाई देती!

नक्षत्र राय—वो देखो, कोई आ रहा है! वो देखो, प्रकाश दीख रहा है वहाँ!

रघुपति—तो खबर लग गई राजाको! अब एक पलकी भी देर न करो। जय महाकाली! (खड्ग उठा लेता है)

गोविन्दमाणिक्य और प्रहरियोंका तेजीसे प्रवेश

राजाके निर्देशानुसार प्रहरियों-द्वारा
रघुपति और नक्षत्र राय
कैद कर लिये जाते हैं

गोविन्दमाणिक्य—ले जाओ इन्हें कारागारमें! कल विचार होगा।

—

चौथा अंक

पहला दृश्य

विचार-सभामें राजा

रघुपति, नक्षत्र राय, सभासद और प्रहरीवृन्द

गोविन्दमाणिक्य (रघुपतिसे)—और कुछ कहना है ?

रघुपति—कुछ नहीं।

गोविन्दमाणिक्य—अपराध स्वीकार करते हो ?

रघुपति—अपराध ? अपराध मुझसे जरूर हुआ है। देवीकी पूजा समाप्त नहीं कर पाया मैं ; – मोहमें मूढ़ होकर अकारण विलम्ब कर दिया मैंने। उसीकी सजा दे रही हैं देवी मुझे, तुम तो मात्र एक निमित्त-कारण हो उसके !

गोविन्दमाणिक्य—सुनो सभासदवृन्द, उपस्थित समस्त जन, राज-नियम है यह, 'पवित्र पूजाके छलसे देवीके आगे जो मोहान्ध देगा जीवोंकी बलि, या उसके लिए करेगा किसी तरहका उद्योग, राज-आज्ञाकी अवज्ञा करके, तो उसे दिया जायगा निर्वासन-दण्ड।' – रघुपति, आठ वर्ष निर्वासनमें रहोगे तुम, तुम्हें राज्यकी सीमाके बाहर छोड़ आयेंगे चार सैनिक जाकर।

रघुपति—देवीके सिवा इस संसारमें ये घुटने नवे नहीं कभी और-किसीके आगे, फिर भी, हाथ जोड़कर नतजानु होकर आज एक प्रार्थना करूंगा तुमसे, दो दिनका दो अवसर, श्रावणके शेष दो दिनके लिए। उसके बाद शरतके प्रथम प्रत्यूषमें चला जाऊंगा मैं तुम्हारे इस दग्ध अभिशाप-ग्रस्त राज्यको छोड़कर, फिर कभी न दिखाऊंगा मुंह अपना।

गोविन्दमाणिक्य—दिया अवसर दो दिनका।

रघुपति—महाराज, राजाधिराज, महिमासागर हो तुम कृपा-अवतार ! धूलसे भी अधम हूं मैं, दीन अभाजन । [प्रस्थान

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र, स्वीकार करो अपराध अपना ।

नक्षत्र राय—महाराज, दोषी हूं मैं । इतना भी साहस नहीं कि क्षमाकी भीख माँगूं । [राजाके पाँव पड़ जाता है

गोविन्दमाणिक्य—बताओ, तुमने किसकी कुमन्त्रणामें आकर इस काममें हाथ लगाया था ? स्वभावसे कोमल हो तुम, ऐसी भीषण बुद्धि तुम्हारी अपनी नहीं हो सकती ।

नक्षत्र राय—और किसे दोष दूं, प्रभु ! और-किसीका नाम नहीं लेना चाहता इस पाप-मुखसे । सिर्फ मैं, मैं ही अकेला हूँ अपराधी । अपनी पाप-मन्त्रणामें आप ही डूब मरा हूं । शत-सहस्र दोष क्षमा किये हैं तुमने अपने इस निर्बोध अयोग्य भाईके, एक बार और क्षमा करो ।

गोविन्दमाणिक्य—नक्षत्र, छोड़ो पाँव, उठो, सुनो मेरी बात । क्षमा करना क्या मेरे हाथ है ? विचारक हूं मैं न्यायासनपर बैठा, अपने शासनमें आप ही आबद्ध हूं, बन्दीसे भी बढ़कर बन्दी ! एक ही अपराधमें एकको मिले दण्ड, और दूसरेको मिल जाय मुक्ति, इतनी क्षमता विधाताको भी नहीं, मै तो हूं ही क्या चीज !

सबके सब—क्षमा करो, प्रभु, क्षमा करो । नक्षत्र भाई हैं महाराजाके ।

गोविन्दमाणिक्य—स्थिर होओ सब । भाई बन्धु कोई भी नहीं मेरा, इस आसनपर हूं जब तक । प्रमाणित हो चुका है अपराध । छोड़कर त्रिपुर-राज्यकी सीमा, ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे, जहाँ है राज-गृह तीर्थ-स्नानार्थियोंके लिए, वहाँ जकर बितायेगा आठ वर्ष निर्वासनमें नक्षत्र !

प्रहरीगण नक्षत्र रायको ले जाना चाहते हैं
इतनेमें राजा सिंहासनसे उतर आते हैं

—देते जाओ विदाका आलिङ्गन, भाई मेरे ! यह दण्ड अकेले तुम्हींको नहीं मिला, नक्षत्र, मेरे लिए भी है यही दण्ड । आजसे राज-प्रासाद चारों

तरफसे काँटोंकी तरह चुभता रहेगा मेरे हृदयमें। तुम्हारे साथ आशीर्वाद रहा मेरा, जब तक दूर रहोगे मुझसे, देव तुम्हारी रक्षा करेंगे।

[नक्षत्रका प्रस्थान

नयन रायका तेजीसे प्रवेश

नयन राय—महाराज, संकट! संकट! चारों तरफसे महा संकटने घेर लिया है!

गोविन्दमाणिक्य—राजा क्या आदमी नहीं? हाय रे विधाता, हृदय क्या तुमने उसका गढ़ा नहीं, अति-दीन-दरिद्रके समान भी? दुःख दोगे और सबोंके समान, और रोनेका अवसर न दोगे जरा भी! काहेका संकट, कैसा संकट, बताओ शीघ्र!

नयन राय—मुगल-सेनाके साथ आ रहा है चाँदपाल, नाश करनेको त्रिपुराका!

गोविन्दमाणिक्य—ऐसा कहना उचित नही, नयन राय, तुम्हारे लायक बात नही यह। शत्रु हो सकता है चाँदपाल तुम्हारा, इससे क्या कलंक थोपोगे तुम उसके नामपर?

नयन राय—बहुत दे चुके हो, महाराज, दण्ड इस दीन अधीनको। पर आजका यह अविश्वास उन सबसे बढ़ गया, महाराज! चरण-च्युत अवश्य हूं मैं महाराजका, इसके मतलब यह नहीं कि मेरा इतना अधःपतन हो गया हो!

गोविन्दमाणिक्य—अच्छी तरह बताओ फिरसे, क्या है तुम्हारा कहना। फिरसे समझ देखूं।

नयन राय—मिलकर मुगलोंके साथ चाँदपाल तुम्हें राज्यच्युत करना चाहता है।

गोविन्दमाणिक्य—तुमने कैसे जाना?

नयन राय—जिस दिन महाराजने मुझे निरस्त्र कर दिया, उसी दिन अस्त्रहीन लज्जासे मैं चला गया देशान्तर। वहाँ सुना कि आसामके साथ

युद्ध छिड़नेवाला है। चल दिया मैं सेनामें भरती होने। रास्तेमें देखा कि मुगल-सेना बढ़ रही है त्रिपुराकी ओर, और उनके साथ है चाँदपाल! अनुसन्धानसे मालूम हो गया उसका षड़यन्त्र। इसीसे दौड़ा आ रहा हूं राज-चरणोंमें।

गोविन्दमाणिक्य—सहसा यह क्या हो गया संसारमें, हे विधाता! इन दो-ही-चार दिनोंमें धरणीके किस छिद्र-पथसे निकल आया सम्पूर्ण नागवंश! रसातलसे निकलकर पृथ्वीपर घूम रहे हैं काल-नाग चारों तरफ फन उठाये! आ गया क्या प्रलय-काल? नहीं-नहीं, समय नहीं अब आश्चर्य प्रकाशका। सेनापति, लो तुम सेनाका भार। यात्रा करो शुरू।

दूसरा दृश्य

मन्दिरके प्राङ्गणमें जयसिंह और रघुपति

रघुपति—गौरव गया, गर्व गया, तेज गया, गया शेष ब्राह्मणत्व! ओरे वत्स, अब मैं तेरा नहीं रहा! कल मैंने बिना किसी संयशके आदेश दिया है तुझे, गुरुके गौरवके साथ, आज सिर्फ अनुनयके साथ भिक्षा माँगनेका अधिकार है मुझे! अन्तरात्माकी वह दीप्ति बुझ चुकी है, जिसके बलपर तुच्छ समझता था मैं ऐश्वर्यकी ज्योतिको, राजाके प्रतापको! नक्षत्र आकाशसे टूटकर धरतीपर आ पड़े तो उससे श्रेष्ठतर बन जाता है मिट्टीका प्रदीप। उसे ढूंढ़ता फिरता है खद्योत धूलमें, कैसा परिहास है! दीप प्रतिदिन बुझता है, प्रतिदिन जलता है, किन्तु तारा एक बार बुझता है तो फिर चिर-अन्धकार ही है। मैं उसी नक्षत्र-सा चिर-दीप्तिहीन हूँ। बहुत छोटी है परमायु, देवताका अति-तुच्छ दानके सिवा और कुछ नहीं वह; उसीके दो दिन राजद्वारमें नतजानु होकर भीखमें माँग लिये हैं। जयसिंह, वे दो दिन व्यर्थ न चले जायें, इतना ही चाहता हूँ मैं! वे दो दिन अपना कंलक मिटाकर मर जायें, अपना काला मुंह राज-रक्तसे लाल करके वे मिट

जायें, बस, और कुछ नहीं चाहिए मुझे। वत्स, निरुत्तर क्यों हो? यह गुरुका आदेश नहीं; जिसने तुझे बचपनसे पालन किया है उसका अनुरोध है। फिर भी निरुत्तर! हाय, पितृहीनका पिता भी न रहा अब मैं? इतना दुःख इस तरह याद दिलाना पड़ रहा है तुझे आज! हाय-हाय, कृपा-भिक्षा भी सही जा सकती है, किन्तु प्यारकी भीख माँगता है जो अभागा, भिक्षुकोंसे भी अधम भिक्षुक है वह। वत्स, फिर भी निरुत्तर? तो फिर नवाता हूं घुटने। जो था इतना-सा, इन घुटनोंसे भी छोटा, उसके आगे झुक जायें ये घुटने मेरे। पुत्र, भीख माँगता हूं मैं!

जयसिंह—बस, अब रहने दो, पिता, इस विदीर्ण हृदयपर अब न प्रहार करो वज्रका। राज-रक्त चाहती है देवी, वही उंडेल दूंगा उसके चरणोंपर। जो चाहेगी देवी, सब दूँगा मैं। सारा ऋण चुका जाऊँगा। वही होगा, वही होगा जो देवी चाहती है! वही होगा! [प्रस्थान

रघुपति—तो वही हो! देवी चाहती है, यही कहके देना! मैं अब कोई भी नहीं तेरा, हाय, अकृतज्ञ! देवीने क्या किया है तेरा? बचपनसे देवीने तुझे पालन किया है प्रतिदिन? रोगी होनेपर क्या की है उसने सेवा तेरी? भूख लगनेपर दिया है उसने अन्न तेरे मुंहमें? मिटाई है ज्ञानकी प्यास? अन्तमें इस अकृतज्ञताकी वेदना ली है क्या देवीने हृदय खोलकर? हाय रे कलिकाल! तू ही रह, मैं चला।

तीसरा दृश्य

राज-प्रासादमें राजा

नयन रायका प्रवेश

नयन राय—विद्रोही सेनाको लौटा लाया हूं, महाराज! युद्धके लिए तैयार है वह। आज्ञा दो, राजन्, आगे बढ़ूं, आशीर्वाद दो—

गोविन्दमाणिक्य—चलो सेनापति, मैं खुद चलूंगा रणक्षेत्रमें।

नयन राय—जब तक इस देहमें प्राण हैं, महाराज शान्त रहें, संकटके मुंहमें जाकर—

गोविन्दमाणिक्य—सेनापति, सबके संकटमेंसे अपना अंश लेना चाहता हूं मै। मेरा राज-अंश सबसे ज्यादा है। आओ सैनिको, ले लो मुझे अपने बीच। अपने राजाको तुम दूर-सिंहासनमें निर्वासित करके समर-गौरवसे वंचित न करो।

गुप्तचरका प्रवेश

गुप्तचर—निर्वासनके रास्तेमें मुगलोंने छीन लिया है कुमार नक्षत्र रायको। राज-पदपर अभिषिक्त किया है उन्हें। आ रहे हैं वे सेना लेकर राजधानीकी ओर।

गोविन्दमाणिक्य—चलो, छुट्टी हुई! अब कोई डर नही। युद्धसे छुट्टी मिल गई।

प्रहरीका प्रवेश

प्रहरी—शत्रु-शिविरसे पत्र आया है, महाराज!

गोविन्दमाणिक्य—देखूं।—नक्षत्रके हस्ताक्षर हैं! शान्तिका संवाद होगा शायद।—यही है स्नेहका सम्भाषण! यह तो नक्षत्रकी भाषा नहीं। चाहता है मेरा निर्वासन, नहीं तो बहा देगा रक्तस्रोतसे सोनेकी त्रिपुरा! भस्म कर देगा मातृभूमिको! बन्दिनी होंगी मुगलोंके अन्तःपुरमें त्रिपुराकी नारियाँ! देखूं, देखूं। हैं तो उसीके अक्षर – 'महाराज नक्षत्रमाणिक्य!' महाराज! देखो देखो, सेनापति, यह देखो, राजदण्डमें निर्वासित किया गया हूं मै, त्रिपुराका राजा! ऐसा ही होता है विधिका खेल!

नयन राय—निर्वासन-दण्ड! यह कैसी स्पर्धा! अभी तो युद्ध समाप्त भी नहीं हुआ!

गोविन्दमाणिक्य—यह तो मुगलोंका दल नहीं। त्रिपुराके राजपुत्रने राजा होनेकी ठानी है, इसके लिए युद्ध क्यों?

नयन राय—राज्यका मंगल—

गोविन्दमाणिक्य—राज्यका मंगल होगा? खड़े होकर दोनों भाई आमने-सामने, चलायेंगे भ्रातृ-हृदय लक्ष्य करके मृत्युमुखी तलवार! राज्यका मंगल होगा उसमें? राज्यमें सिर्फ सिंहासन है, – गृहस्थका घर नहीं, भाई नहीं, भ्रातृत्वका बन्धन नहीं यहाँ? देखूं, देखूं, और एक बार देखूं, क्या यह उसीके हस्ताक्षर हैं? नक्षत्रकी अपनी रचना है यह? मैं दस्यु हूं! देवद्वेषी हूं, अन्यायी हूं, इस राज्यका अकल्याण हूं मैं! नहीं नहीं, यह उसकी रचना हरगिज नहीं हो सकती। रचना चाहे जिसकी भी हो, अक्षर तो उसीके हैं। अपने हाथसे लिखा तो उसीने है। किसी भी सर्पका विष हो, अपने अक्षरोंके मुंहमें लगाया तो उसीने है वह विष! भोंके हैं मेरी छातीमें! रे विधि, यह तेरी ही दी-हुई सजा है, उसकी नहीं। निर्वासन! होने दो, ऐसा ही होने दो। उसके निर्वासन-दण्डको उसकी तरफसे मैं ही झेलूंगा विनम्र नीरव होकर।

—

पाँचवाँ अंक

पहला दृश्य

मन्दिरके बाहर आँधी चल रही है

पूजाकी सामग्री लेकर रघुपतिका प्रवेश

रघुपति—इतने दिन बाद, आज जागी है देवी! कैसा रोष-हुङ्कार है! अभिशापका बज्रपात करती-हुई उड़ी चली जा रही है नगरके ऊपरसे, तिमिर-रूपिणी! तेरी प्रलय-सङ्गिनियाँ भी आज भीषण क्षुधाकी ताड़नासे झकझोरे डाल रही हैं विश्व-महातरुको! हः हः हः हः! आज मिटा दूंगा तेरा दीर्घ-उपवास! भक्तको संशयमें डालकर इतने दिन कहाँ थी देवी? तेरा खड्ग तू न उठावे तो हमसे उठ सकता है भला? कैसा आनन्द है! आज तेरी चण्डी-मूर्ति देखकर साहससे चित्त भर उठा है; संशय दूर

हो गया, हतसम्मान नत मस्तक आज ऊंचा हो गया नये तेजसे। हाँ हाँ, आ रही है, सुन सुन, पगध्वनि सुन! आ रही है तेरी पूजा! जय महादेवीकी जय!

अपर्णाका प्रवेश

—दूर हो, दूर हो मयाविनी, राक्षसी! दूर हो! जयसिंहको चाहती है तू! अरी ओ सर्वनाशिनी, महापातकिनी! दूर हो यहाँसे। [अपर्णाका प्रस्थान —यह कैसा अकला-विघ्न! जयसिंह यदि न आये! हरगिज नहीं, सत्य भङ्ग वह कभी नहीं कर सकता। – जय महाकाली, सिद्धिदात्री! जय भयङ्करी! अगर किसी संकटमें पड़ जाय, कोई रोक ले, पकड़ ले, अगर उसके प्राण चले जायें प्रहरीके हाथसे? – जय मा अभया! जय मा भक्त-सहाया, भक्तवत्सला! जय मा जाग्रत देवी! जय सर्वजयी! भक्त-वत्सलाका दुर्नाम न हो इस संसारमें, मा! देखना मा, शत्रुपक्ष कहीं हँसी न उड़ावे तेरी निःशंक कौतुकसे! मातृ-अहंकार अगर चूर्ण हो जाय सन्तानका, 'मा' कहके फिर कोई न पुकारेगा तुझे! हाँ हाँ, सुनाई दे रही है पगध्वनि। आ तो रहा है जयसिंह। जय नृमुण्डमालिनी! जय पाषाण-दलिनी महाशक्ति!

जयसिंहका तेजीसे प्रवेश

—जयसिंह, राज-रक्त कहाँ है?

जयसिंह—है, है! छोड़ो मुझे। स्वयं करूंगा मैं रज-रक्त दान। – राज-रक्त चाहिए तुझे दयामयी, जगत्पालिनी माता? नहीं तो किसी भी तरह तेरी प्यास नहीं मिट सकती? मैं राजपूत हूं, मेरे पूर्व-पितामह थे राजा, अब भी राज्य करते हैं मेरे मातामहके वंशज, – राज-रक्त है मेरी देहमें! यही रक्त दूंगा तुझे। यही हो शेष रक्त, माता! इसी रक्तसे मिट जाय तेरी अनन्त पिपासा, री रक्ततृषातुरा!

छातीमें छुरी भोंक लेता है

रघुपति—जयसिंह! जयसिंह! निर्दय, निष्ठुर! यह क्या किया तूने सर्वनाश मेरा! जयसिंह, अकृतज्ञ, गुरुद्रोही, पितृधर्मघाती, स्वेच्छाचारी!

जयसिंह, कुलिश-कठिन ! अरे ओरे जयसिंह, मेरे एकमात्र प्राण, प्राणाधिक, जीवन-मन्थनका धन ! जयसिंह, वत्स मेरा, गुरुवत्सल प्रिय शिष्य मेरा ! लौट आ, लौट आ, तेरे सिवा और कुछ नहीं चाहिए मुझे। अहंकार अभिमान देवता ब्राह्मण सब मिट जाय ! तू रह, तू आ, लौट आ—

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा—पागल कर देगा मुझे ! जयसिंह, कहाँ है जयसिंह ?

रघुपति—आ बेटी अमृतमयी ! बुला, बुला अपने सुधाकण्ठसे, पुकार व्यग्र स्वरसे, बुला, बुला जी-जानसे ! बुला जयसिंहको ! तू ले जा उसे बेटी, अपने पास, मैं नहीं चाहता।

अपर्णा मूर्च्छित हो जाती है

रघुपति (प्रतिमाके चरणोंपर सिर पटकता-हुआ)—लौटा दे ! लौटा दे ! लौटा दे ! लौटा दे !

दूसरा दृश्य

राज-प्रासादमें गोविन्दमाणिक्य और नयन राय

गोविन्दमाणिक्य—अभीसे आनन्दध्वनि ! अभीसे पहन ली दीपमाला निर्लज्ज प्रासादने ! उठ रहा है राजधानीके बहिर्द्वारपर विजय-तोरण, पुलकित नगरकी आनन्दसे उठाई-हुई बाहुओं-सा ! अभी तो प्रासादसे बाहर भी नहीं निकला मैं, छोड़ा नहीं सिंहासन ! इतने दिन राजा था,—किसीका भी उपकार नहीं किया कोई मैंने ? किसी अन्यायको नहीं किया दूर ? किसी अत्याचारका नहीं किया दमन कभी ? धिक् धिक् निर्वासित राजा तुझे ! आप ही अपना विचार करके अपने शोकमें आप ही गिराता है आँसू आज ! मर्त्य-राज्य गया, जाने दो, अपना राजा तो फिर भी हूं मैं ! महोत्सव होने दो आज अन्तरात्माके सिंहासन-तले !

गुणवतीका प्रवेश

गुणवती—प्रियतम, प्राणेश्वर, अब और क्यों, नाथ! अब तो सुन लिया देवीका निषेध! आओ प्रभु, आज रातको शेष पूजा करके राम-जानकीकी तरह चले चलें निर्वासनमें दोनों।

गोविन्दमाणिक्य—प्रियतमे, आज शुभ दिन है मेरा। राज्य गया, जाने दो, तुम्हें तो पा गया फिरसे! आओ प्रिये, चलें दोनों मिलके देवीके मन्दिरमें, केवल प्रेम लेकर, केवल पुष्प लेकर, मिलनके अश्रु लेकर, विदाका विशुद्ध विषाद लेकर। आज रक्त नहीं, हिंसा नहीं; और कुछ नहीं; प्रेम, प्रेम, एकमात्र प्रेम है!

गुणवती—मेरी भी एक भीख है, बात रखो, नाथ!

गोविन्दमाणिक्य—बोलो, देवी!

गुणवती—पाषाण न होओ। राज-गर्व छोड़ दो। देवतासे पराभव न मानना चाहो तो न सही; मेरी यन्त्रणा देखकर विगलित हो तुम्हारा हृदय। तुम तो निष्ठुर कभी भी न थे, नाथ! किसने कर दिया तुम्हें पाषाण! किसने तुम्हें छीन लिया मेरे सौभाग्यसे? कर दिया मुझे राजा-हीन रानी!

गोविन्दमाणिक्य—प्रिये, मुझपर विश्वास करो एक बार, बिना-समझे समझो एक बार मेरी तरफ देखकर। आँसू देखके समझो, मुझे जो प्यार करती हो उस प्यारसे समझो। – अब रक्तपात नहीं! मुंह न फेरो, देवी! अब न छोड़ो मुझे, निराश न करो आशा देकर। जाओ अगर, मार्जना करके जाना! [गुणवतीका प्रस्थान
—चली गई! – कैसा कठिन-कठोर निष्ठुर है संसार! – अरे कौन है! कोई नहीं। चल दिया। विदा, शेष विदा, हे सिंहासन! हे पुण्य-प्रासाद, मेरे पूर्वजोंकी गोद, निर्वासित पुत्र तुम्हें प्रणाम करके लेता है विदा आज! प्रणाम! प्रणाम, हे सिंहासन!

तीसरा दृश्य

अन्तःपुरमें गुणवती

गुणवती—बजाओ, बजाओ बाजे ! आज रातको पूजा होगी। आज मेरी प्रतिज्ञा पूरी होगी। लाओ बलि ! लाओ जवाकुसुम ! खड़ी हो सब ? आज्ञा नहीं सुनोगी ? ये कोई भी नहीं ! राज्य चला गया तो क्या इत्ती-सी भी रानी बाकी नहीं बची, आदेश सुनें जिसका किंकर-किंकरी ? यह लो कंकण, यह लो हीरोंका कण्ठा, यह लो सबके सब आभरण ! जल्दी जाकर करवाओ पूजाकी तैयारियाँ, देवीकी पूजा होगी आज ! मा महामाया, इस दासीको रखना अपने चरणोंमें।

चौथा दृश्य

मन्दिरमें रघुपति

रघुपति—देखो, देखो, किस तरह खड़ा है जड़ पाषाणका स्तूप ! मूढ़ निर्बोधकी तरह ! मूक, पंगु, अन्धी, बहरी ! तेरे ही पास आकर सारा व्यथित विश्व रो-रो मरता है ! पाषाण-चरणोंमें तेरे, महान हृदय अपनेको चूर्ण-विचूर्ण कर देता है पछाड़-पछाड़कर ! हः हः हः हः ! किस दानवका है यह क्रूर-परिहास, जो जगतमें बैठा है इतना उच्च आसन जमाये ! 'मा' कहके जितना ही पुकारते हैं संसारके जीव सब, उतना ही घोरतर अट्टहास्य हँसकर करती है विद्रूप तू ! दे, लौटा दे, लौटा दे मेरे जयसिंहको ! लौटा जल्दी ! दे मेरे जयसिंहको, राक्षसी, पिशाची ! (प्रतिमाको झकझोर डालता है) सुनाई नहीं देता, बहरी ! कान नहीं हैं ? जानती है, क्या किया है तूने ? किसका खून पीया है, जानती है ? किस पुण्य-जीवनकी बलि ली है जानती

है ? स्नेह-दया-प्रीतिसे भरे महा-हृदयकी ! (क्षण-भर स्तब्ध रहकर) – जा, जा ! रह तू चिरकाल इसी तरह, इस मन्दिरके सिंहासनपर, सरल भक्तिके प्रति करती रह गुप्त उपहास ! – दूंगा तुझे 'पूजा' प्रतिदिन, करूंगा प्रणाम मैं चरणोंमें ; दयामयी 'मा' कहकर पुकारूंगा सदा ; तेरा परिचय न दूंगा किसीको ; दे, दे, लौटा दे सिर्फ मेरे जयसिंहको ! – किसके आगे रो रहा हूं मैं ! तो जा, दूर हो, दूर हो, दूर हो राक्षसी ! हृदयदलिनी पाषाणी ! दूर हो यहाँसे ! हलकी हो जाय पृथ्वीकी छाती !

रघुपति प्रतिमा उठाकर नीचे गोमतीके पानीमें फेंक देता है

मशाल और गाजे-बाजेके साथ गुणवतीका प्रवेश

गुणवती—जय ! जय महादेवीकी जय ! देवी कहाँ, प्रभु ?

रघुपति—देवी नहीं है ।

गुणवती—लौटाओ देवीको, गुरुदेव, ले आओ उन्हें ; आज रोष शान्त कर दूंगी उनका । लाई हूं पूजा आज ! राज्य, पति, सब-कुछ छोड़कर पालन किया है सिर्फ अपना प्रण मैंने । दया करो, दया करके देवीको वापस ले आओ, आजकी मात्र एक रातके लिए । कहाँ हैं देवी !

रघुपति—कहीं भी नहीं । ऊपर नहीं, नीचे नहीं, कहीं भी नहीं देवी । कहीं भी नहीं थी वह कभी भी ।

गुणवती—प्रभु, यहाँ नहीं थी क्या देवी ?

रघुपति—देवी कहती हो उसे ! इस संसारमें कहीं भी होती अगर देवी, तो उस पिशाचिनीको 'देवी' कहना क्या कभी सह सकती थी देवी ? महत्त्व क्या फिर हृदय विदारकर निष्फल-रक्त बहानेमें मूढ़ पाषाणके चरणोंमें ! देवी कहती हो उसे ! पुण्य-रक्त पान करके वह महाराक्षसी फटकर मर गई । नहीं है देवी, जाओ, जाओ—

गुणवती—गुरुदेव, मेरा वध न करो । सच-सच बताओ, क्या बात है ? देवी नहीं है ?

रघुपति—नहीं है ।

गुणवती—देवी नहीं ?

रघुपति—नहीं।

गुणवती—देवी नहीं ? तो कौन है वहाँ ?

रघुपति—कोई नहीं। कुछ नहीं। जाओ, जाओ यहाँसे—

गुणवती (परिचारिकाओंसे)—ले जा, ले जा पूजा ! चल, चल, जल्दी चल। बता जल्दी, किस मार्गसे गये हैं महाराज ?

अपर्णाका प्रवेश

अपर्णा—पिता !

रघुपति—जननी, जननी, जननी मेरी ! – 'पिता' ! यह तो भर्त्सनाका तिरस्कारका नाम नहीं, – 'पिता' ! बेटी, मा मेरी, इस पुत्रघातीको 'पिता' कहके जो पुकारता था वही रख गया है सुधामय नाम तेरे कण्ठमें, इतनी दया कर गया है ! अहा, बुला, बुला फिरसे एक बार !

अपर्णा—पिता ! आओ, इस मन्दिरको छोड़कर कहीं दूर चले चलें हम दोनों।

पुष्प-अर्घ्य लेकर राजाका प्रवेश

राजा—देवी कहाँ ?

रघुपति—देवी नहीं है।

राजा—यहाँ यह रक्तधारा कैसी ?

रघुपति—यही है शेष पुण्य-रक्त इस पाप-मन्दिरमें ! जयसिंहने बुझा दी आज अपने रक्तसे हिंसारक्त-शिखा !

राजा—धन्य, धन्य, धन्य जयसिंह ! पूजाकी पुष्पाञ्जलि यह तुम्हींको सौंपता हूं।

गुणवती—महाराज !

राजा—प्रियतमे !

गुणवती—आज देवी नहीं है, – तुम्ही एकमात्र देवता हो मेरे !

राजा—गया पाप। देवी आज लौट आई मेरी देवीमें !

अपर्णा—पिता, चले आओ।

रघुपति—पाषाण टूट गया, – जननीने दर्शन दिये हैं आज प्रत्यक्ष प्रतिमाके रुपमें ! बेटी, मा, जननी अमृतमयी !

अपर्णा—पिता, चले आओ !

भाभी

१

असलमें, भूपति अगर कोई काम न भी करता तो भी उसका काम चल सकता था। कारण, उसके पास काफी पैसा था; और देश भी गरम ठहरा। मगर ग्रहका फेर कि आप 'कामके आदमी' होकर पैदा हुए थे! और इसलिए उन्हें एक अंग्रेजी अखबार निकालना ही पड़ा। उसके बाद फिर उन्हें समयकी लम्बाईपर कभी भी विलाप नहीं करना पड़ा।

छुटपनसे ही उन्हें अंग्रेजी लिखने और लेक्चर देनेका शौक था। कोई जरूरत न होनेपर भी वे अंग्रेजी अखबारोंके लिए चिट्ठियाँ लिखा करते थे; और कुछ वक्तव्य न होनेपर भी सभा-समितियोंमें जा-जाकर लेक्चर दिया करते थे।

उन जैसे धनी आदमीको अपने दलमें पानेकी गरजसे राजनैतिक दलपतियोंने भी भूपतिकी तारीफ करनेमें कोई कसर नहीं रखी; और उसका नतीजा यह हुआ कि अपनी अंग्रेजी रचना-शक्तिके विषयमें उनकी धारणा असलियतसे बहुत आगे बढ़ गई।

अन्तमें, उनके सम्बन्धी उमापति भी अपनी वकालत छोड़कर बहनोईकी सहायता करने आ गये। बोले—"तुम एक अंग्रेजी अखबार निकालो। तुम्हारी ऐसी असाधारण लेखनी है···" वगैरह-वगैरह।

भूपति बाबू अत्यन्त उत्साहित हो उठे। सोचा, दूसरोंके अखबारोंमें पत्र प्रकाशित करनेमें कोई गौरव नहीं। अपने अखबारमें स्वाधीन लेखनी अबाधगतिसे पूरी तेजीके साथ दौड़ सकती है। और, इसके कुछ ही दिन बाद, देखा गया कि सम्बन्धी-साहब पत्रके सहकारी-सम्पादक बने हुए हैं; और बहनोई-साहब, बहुत ही कम उमरमें, प्रधान-सम्पादककी गद्दीपर विराजमान हैं।

खासकर कम उमरमें सम्पादकीय नशा और राजनीतिक नशा बहुत जोर करते हैं। उसपर, भूपतिको जोशपर चढ़ाकर उत्साह देनेवाले भी काफी मिल गये।

इस तरह भूपति तो अखबारके नशेमें चूर हो रहे थे ; और उधर उनकी बालिका वधू श्रीमती चारुलता धीरे-धीरे यौवनकी ओर कदम बढ़ा रही थी। अखबारके सम्पादकको इस जरूरी समाचारका पता तक न था ! वे तब भारत-सरकारकी सीमान्त-नीति किस तरह धीरे-धीरे बढ़ती हुई संयमकी सीमा लाँघ रही है, इस विषयमें अपना मतामत प्रकट करनेमें व्यस्त थे।

पतिके पास पैसा काफी था, लिहाजा चारुलताको घरका कोई काम-काज नहीं करना पड़ता था। उसके चेष्टाहीन जीवनका एकमात्र कार्य ही यह था कि परिपूर्ण अनावश्यकताके बीच फल न-देनेवाले फूलकी तरह दिन-रात केवल खिलते ही रहना। उसके किसी बातकी कमी नहीं थी ; और इसीलिए उसके हँसी-खेलमें कहीं कोई विराम भी नहीं था।

ऐसी हालतमें मौका पाते ही कुलवधुएँ अपने पतिके विषयमें बहुत-कुछ ज्यादती करने लगती हैं, और दाम्पत्य-लीलाकी सीमान्त-नीति घर-गृहस्थीकी सीमा लाँघकर समयसे असमयमें और विहितसे अविहितमें पहुँच जाती है। किन्तु चारुलताको वह मौका भी नहीं मिला। अखबारकी चहारदीवारी तोड़कर पतिपर अधिकार करना उसके लिए कठिन हो गया।

युवती स्त्रीकी तरफ ध्यान आकर्षित करके रिश्तेमें बड़ी किसी बड़ी-बूढ़ीने जब भूपतिको फटकारा, तो सचेत होकर उन्होंने कहा—"तब तो चारुके पास किसी सहेलीका रहना जरूरी है, अकेली बेचारी क्या करे बैठी-बैठी !"

इसी सिलसिलेमें एक दिन उमापतिसे उन्होंने कहा—"तुम अपनी स्त्रीको यहाँ ले आओ न ! बराबरकी कोई स्त्री पास नहीं, इसलिए जरूर चारुको सूना-सा लगता होगा।"

स्त्री-संगका अभाव ही चारुके लिए अत्यन्त दुःखदायी है, बस, इतना ही सम्पादककी समझमें आया ; और सरहज मन्दाकिनीको अपने घर लाकर बेचारा निश्चिन्त भी हो गया।

स्त्री-पुरुष प्रेमोन्मेषके प्रथम अरुणालोकमें जब कि परस्पर एक-दूसरेको अपूर्व महिमासे चिर-नवीन समझने लगते हैं, दाम्पत्य-जीवनका वह स्वर्ण-प्रभासे मण्डित ऊषाकाल अचेतन-अवस्थामें कब विदा लेकर चला जाता है, किसीको मालूम ही नहीं पड़ता। इस दम्पतिके जीवनमें भी ठीक वैसा ही हुआ; नवीनताका स्वाद पानेके पहले ही दोनो एक दूसरेके लिए पुराने परिचित और अभ्यस्त हो गये।

चारुलताका पढने-लिखनेकी तरफ एक स्वाभाविक आकर्षण था, इसलिए दिन उसके बोझ नही बने; उसने अपनी कोशिश और नाना कौशलसे पढ़ने-लिखनेका इन्तजाम कर लिया था। भूपतिका एक फुफेरा-भाई अमल थर्ड-ईयरमें पढ़ता था। चारु उससे पढ़ लिया करती थी; और इतने-से कामके बदलेमें उसे अमलकी कुछ ज्यादतियाँ भी सह लेनी पड़ती थीं। अकसर उसे अमलको अंग्रेजी होटलमें खाने और अंग्रेजी किताबें खरीदनेका खर्च देना पड़ता था। इसके अलावा, अमल कभी-कभी अपने मित्रोंको भी निमन्त्रित करके खिलाता-पिलाता था; और उस यज्ञका सारा भार गुरु-दक्षिणाके तौरपर चारुलताको ही उठाना पड़ता था। पति भूपतिकी तरफसे पत्नी चारुलतापर किसी तरहकी माँगका भार नहीं था; किन्तु पतिका फुफेरा भाई अमल उसे जरा-सा पढ़ाकर इतनी ज्यादा फरमाइशें पेश किया करता कि जिसकी हद नही। इसपर चारुलता कभी-कभी बनावटी गुस्सा और विद्रोहका भाव भी दिखाया करती; किन्तु उसका कुछ नतीजा नहीं निकलता; क्योंकि किसी एक आदमीके किसी काममें आना और स्नेहके नाना उत्पात सहना उसके लिए बहुत जरूरी हो गया था।

एक दिनकी बात है। अमलने कहा—"भाभी, हमारे कालेजमें एक राजाका दामाद पढ़ता है; और वह खास राजाके खास रनवासमें हाथसे बुने-हुए कारपेटके जूते पहनके आता है,—मुझसे तो नहीं सहा जाता। भाभी, मुझे भी वैसे ही कारपेटके जूते चाहिए, नही-तो मेरी पद-मर्यादा अब धूलमें ही मिलनेवाली है, समझ लो!"

चारुने कहा—"हाँ हाँ, मै यही जो किया करूं रात-दिन, मेरे और कोई

काम थोड़े ही है, बैठी-बैठी तुम्हारे लिए जूते बुना करूं ! दाम दिये देती हूं, बाजारसे खरीद लेना ।"

अमलने कहा—"सो नहीं होनेका !"

चारु जूतेका कार्पेट बुनना नहीं जानती ; और अमलके सामने वह इस बातको स्वीकार भी नहीं करना चाहती । जब कि खुद अमल चाहता है तो संसारमें इस एकमात्र प्रार्थीकी प्रार्थनाको पूरी किये बिना भी वह कैसे रह सकती है ! अमल जब कालेज चला जाता, तब वह छिपे-छिपे खूब मन लगाकर कारपेटकी सिलाई सीखा करती । और, अमल जब खुद जूतेकी बात बिलकुल भूल चुका, तो एक दिन शामको चारुने उसे खास तौरसे निमन्त्रण देकर बुलाया ।

गरमियोंके दिन थे । छतपर आसन बिछाकर अमलके लिए थाली परोसी गई । थाली पीतलके ढकनेसे ढकी हुई थी । अमल कालेजके कपड़े उतारकर, हाथ-मुँह धोकर, फिट-फाट होकर ऊपर पहुँचा ।

आसनपर बैठकर उसने थालीका ढक्कन उठाया, और खोलते ही देखा कि थालीमें बहुत ही खूबसूरत पशमी कारपेटके नये जूते रखे हैं ! इसपर चारु कहकहा मारकर हँस पड़ी ।

जूते पाकर अमलकी उमंगें और भी आगे बढ़ने लगीं । अबकी गुलूबन्द चाहिए तो अबकी रेशमी रूमालके चारों तरफ फूलदार जाली लगा देनी होगी ! एक दिन फरमाइश हुई कि बाहरवाले बैठने-उठनेके कमरेमें उसकी जो आराम-कुरसी है उसपर तेलका दाग लग गया है, उसपर चढ़ानेके लिए रेशमी बेल-बूटेदार गिलाफ चाहिए !

हर बार चारुलता उसकी फरमाइशका विरोध करके कलह करती और हर बार बड़े जतन और स्नेहके साथ शौकीन अमलका शौक पूरा कर देती । अमल बीच-बीचमें कभी-कभी पूछ भी लिया करता, "भाभी, कितना और बाकी है ?"

चारुलता झूठमूठको कह देती, "अभी तो शुरू ही नहीं किया ।" और कभी कहती, "मुझे उसकी याद ही नहीं रही ।"

पर अमल कब छोड़नेवाला था ! रोज याद दिला देता, और मचलता रहता। हाथ धोकर पीछे-पड़नेवाले अमलके मनमें उत्पातका उद्रेक करा देनेके लिए ही चारु अपनी उदासीनता दिखाकर विरोध पैदा करती ; और सहसा एक दिन उसकी प्रार्थना पूरी करके कौतुक देखा करती।

धनाढ्य पतिके घर चारुको और-किसीके लिए कुछ नही करना पडता। सिर्फ एक अमल ही ऐसा है जो उससे काम कराये बगैर नही मानता। लेकिन कुछ भी हो, इसमे, सन्देह नही कि इन्ही सब छोटे-मोटे शौकके कामोसे ही चारुलताकी हृदयवृत्ति चरितार्थ होती थी।

भूपतिके अन्त·पुरमें जो थोड़ी-सी जमीन खाली पड़ी थी उसे अगर बगीचा कहा जाय, तो जरा-कुछ अत्युक्ति ही होगी। खैर, उस बगीचेमें मुख्य बनस्पति थी विलायती आमड़ेका एक पेड़।

उस बगीचेकी तरक्कीके लिए चारु और अमलने आपसमें एक कमेटी बना ली है। कुछ दिनसे दोनों मिलकर कागजपर चित्र और नक्शा बनाकर बड़े उत्साहसे बगीचेकी कल्पना प्रतिफलित कर रहे हैं।

अमलने कहा—"भाभी, हमारे इस बगीचेमे प्राचीनकालकी राजकुमारीकी तरह तुम्हें अपने हाथसे पेड़ोंको पानी देना पड़ेगा !"

चारुने कहा—"और पीछेके उस कोनेमें एक झोंपड़ी बनानी होगी, जिसमें हरिनके बच्चे रहेंगे।"

अमल बोला—"और, एक छोटी-सी झील भी बनानी होगी, जिसमें हंस तैरा करेंगे।"

चारुलताने इस प्रस्तावपर उत्साहित होकर कहा—"और मै उसमें नील-कमल लगाऊँगी, बहुत दिनोसे मुझे नील-कमल देखनेकी साध है।"

अमल बोला—"उस झीलपर एक पुल बाँधा जायगा, और उसके घाटपर छोटी-सी एक नाव बँधी रहा करेगी।"

चारुने कहा—"घाट सफेद संगमरमरका होगा।"

अमलने कागज-पेन्सिल लेकर, रूल खीचकर, 'कम्पास'की मददसे बड़े आडम्बरके साथ बगीचेका एक नक्शा बना डाला।

इसके बाद दोनों मिलकर प्रतिदिन कल्पनाओंका संशोधन और परिवर्तन करने लगे ; और इस तरह और-भी बीस-पचीस नये नक्शे तैयार हो गये ।

'मैप' बन जानेपर खरचेका 'एस्टिमेट' बनने लगा । पहले तय हुआ था कि चारु अपने हाथ-खर्चके रुपयोंमेंसे धीरे-धीरे बगीचा बनवायेगी । भूपतिको तो घरमें कहाँ क्या हो रहा है कुछ पता ही नहीं रहता । चारुने सोचा, बगीचा बन जानेपर वहाँ पतिको निमन्त्रित करके वह उन्हें अचरजमें डाल देगी । भूपति सोचेगा कि जरूर अलादीनके चिरागकी सहायतासे जापान देशसे पूरा बगीचेका बगीचा उड़ा लाया गया है !

मगर 'एस्टिमेट' काफी किफायतसारीके साथ बनाया जानेपर भी चारुको वह पसन्द नहीं आया । उतने रुपये वह लायेगी कहाँसे ? लिहाजा, अमलने फिर एक नक्शा बनाया ; और उसमें बहुत-कुछ उलट-फेर किया गया ।

अमलने कहा—"तो एक काम किया जाय, भाभी, झील अभी रहने दो ; पीछे देखा जायगा । क्यों, ठीक है न ?"

चारुने कहा—"नहीं नहीं, झील ही नहीं हुई तो फिर रहा क्या ! हमारा नील-कमल तो उसीमें रहेगा !"

अमलने कहा—"तो फिर हरिनकी कुटियाकी टालीकी छत रहने दो, उसे ऐसे ही फूंससे छा देनेसे काम चल जायगा ।"

इसपर चारुको गुस्सा आ गया, उसने कहा—"तो रहने दो, मुझे उस घरकी जरूरत नहीं ।"

पहले मारीशससे लौंग, कर्नाटसे चन्दन और सिंहलसे दालचीनीके पौधे मँगानेकी बात हुई थी ; अमलने उसके बदले मानिकतल्लेके बगीचेसे मामूली देशी और विलायती पौधे मँगानेके लिए कहा, तो चारु मुँह फुलाकर बैठ गई, बोली—"तो रहने दो, मुझे बगीचा नहीं चाहिए ।"

सभी जानते हैं कि 'एस्टिमेट' घटानेका यह तरीका नहीं है । किन्तु 'एस्टिमेट'के साथ-साथ कल्पनाओंको भी रौंदना चारुके लिए असाध्य है ; और अमल मुंहसे चाहे जो भी कहे, उसे भी यह अच्छा नहीं लग सकता ।

अमलने कहा—"तो, भाभी, तुम भाई साहबसे बगीचेके बारेमें कहतीं क्यों नहीं, वे जरूर रुपये दे देंगे।"

चारुने कहा—"नहीं, उनसे कहनेसे तो मजा ही जाता रहेगा। हम ही दोनों मिलकर बगीचा बनायेंगे। उनसे कहनेसे तो 'ईडन गार्डन' बनवा देंगे वे! तो फिर हमारे प्लैनका क्या होगा?"

विलायती आमड़ेके पेड़की छाया-तले बैठे हुए, चारु और अमल दोनों असाध्य संकल्पके कल्पना-सुखमें गोते लगा रहे थे। इतनेमें चारुकी भौजाई मन्दाकिनीने दुमंजिलेसे पुकारकर कहा—"इतनी अबेर हो गई, तुमलोग कर क्या रहे हो बगीचेमें?"

चारुने जबाब दिया—'पके आमड़े ढूँढ़ रही हूं।"

खटाईकी लालचिन मन्दाकिनीने कहा—"मिलें तो मेरे लिए भी लेती आना।"

चारु हँसने लगी; और अमल भी हँस दिया। उन दोनोंके संकल्पोंमें प्रधान आनन्द और गौरव यह था कि वे उन्हीं दोनोंमें आबद्ध थे। मन्दाकिनीमें और चाहे जो भी गुण हों, पर कल्पना नहीं थी; वह इन सब बातोंमें रस कहाँसे लेती? वह इन दो सदस्योंकी सब तरहकी कमेटीसे बिलकुल न्यारी थी।

असाध्य भावी बगीचेका न तो एस्टिमेट घटा, और न कल्पनाने ही किसी अंशमें हार मानी। लिहाजा कुछ दिनों तक आमड़ेके पेड़के नीचे बार-बार कमेटी बैठती रही। बगीचेमें जहाँ झील खुदेगी, जहाँ हरिनकी कुटिया छवेगी, जहाँ पत्थरकी वेदी बनेगी, अमलने उन सब स्थानोंपर लाल निशान लगा दिये।

उस दिन, बगीचेमें आमड़ेके पेड़के नीचे किस तरहका चबूतरा बनाया जायगा, अमल उसके चारों तरफ कुदालसे निशान बना रहा था। इतनेमें चारु आकर पेड़की छायामें बैठ गई; और बोली—"अमल, तुम्हें अगर लिखना आता तो बहुत अच्छा होता!"

अमलने पूछा—क्यों अच्छा होता?"

चारुने कहा—"तो अपने इस बगीचेका वर्णन कराके तुमसे एक कहानी लिखवाती। यह झील, हरिनकी कुटिया, आमड़ेका पेड़, सब रहता उसमें। हम दोनोके सिवा और-कोई कुछ समझ ही नही पाता उसे, बड़ा मजा होता! एक बार लिखनेकी कोशिश करो न तुम, जरूर तुम लिख सकोगे।"

अमल—"अच्छा, अगर लिख सका तो तुम मुझे क्या दोगी?"

चारु—"क्या चाहते हो तुम?"

अमल—"मेरी मशहरीके चॅदोएपर मै पेन्सिलसे फूल और लताएँ बना दूँगा, तुम्हें उसपर रेशमका काम कर देना होगा।"

चारु—"यह तो तुम्हारी ज्यादती है! मशहरीके चॅदोएपर कही फूल-पत्तियोका काम होता है!"

मशहरी जैसी चीजको सौन्दर्य-हीन कारागार बना रखनेके विरुद्ध अमलने बहुत-सी युक्तियाँ पेश की; और अन्तमें कहा—"दुनियामें पन्द्रह आना आदमी ऐसे हैं जिन्हें सौन्दर्यका रत्ती-भर भी ज्ञान नही। असुन्दरता उन्हें खटकती ही नहीं, यही प्रमाण है उसका।"

चारुने उसी वक्त मन-ही-मह यह बात मान ली; और यह जानकर वह खुश भी हुई कि उन-दोनोंकी एकान्त कमेटी दुनियाके पन्द्रह-आना आदमियोसे अलग है। उसने कहा—"अच्छी बात है, मै मशहरीका चॅदोआ बना दूंगी। तुम लिखो।"

अमलने रहस्यपूर्ण भावसे कहा—"तुम क्या समझती हो कि मै लिख ही नही सकता?"

चारु उत्तेजित हो उठी, बोली—"तो जरूर तुमने कुछ लिखा है! मुझे दिखाओगे नही?"

अमल—"आज रहने दो, भाभी।"

चारु—"नही, आज ही दिखाना होगा। तुम्हें मेरी सौगन्द है, जाओ, अपनी कापी ले आओ।"

असलमें, चारुको अपनी रचना सुनानेकी तीव्र व्यग्रता ही अमलको अब तक रोके हुए थी। उसे दुबिधा थी कि कही चारुकी समझमें न आया तो,

उसे अच्छी न लगती तो ? और इस संकोचको वह दूर नहीं कर सकता था। आज, कापी लाकर, जरा सुर्ख होकर, जरा खाँस-खकारकर उसने पढ़ना शुरू किया। और चारु पेड़के तनेके सहारे बैठकर घासपर पैर पसारे सुनने लगी। शीर्षक था, 'मेरी कापी।'

अमलने लिखा था—"हे मेरी शुभ्र कापी, कल्पनाओंने अभी तक तुम्हारा स्पर्श नहीं किया। सूतिका-गृहमें भाग्यपुरुषके प्रवेश करनेके पहलेके शिशुके ललाटपटकी तरह तुम निर्मल हो, तुम रहस्यमयी हो! जिस दिन तुम्हारे अन्तिम पृष्ठकी अन्तिम पंक्तिमें उपसंहार लिखूंगा, वह दिन आज कहाँ है ? तुम्हारे ये शुभ्र शिशु-पत्र चिरकालके लिए मसी-चिह्नित उस समाप्तिकी आज स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर रहे।" इत्यादि।

चारु पेड़की छायामें बैठी स्तब्ध होकर सुन रही थी। पढ़ना खतम होनेके बाद कुछ देर चुप रहकर बोली—"तुम लिख नहीं सकते, क्यों!"

उस दिन, उस पेड़के नीचे अमलने पहले-पहल साहित्यका मादक-रस पान किया। साकी थी नवीना, रसना भी नवीन थी; और तीसरे पहरकी सूर्यरश्मि दीर्घ छाया-पातसे रहस्यमयी होती जा रही थी।

चारुने कहा—"अमल, थोड़ेसे आमड़े ले चलने होंगे, नहीं तो, मन्दाको कैफियत क्या दूँगी ?"

मूढ़ मन्दाके सामने ये सब साहित्यिक बातें कहनेकी प्रवृत्ति ही नहीं होती; इसलिए उसके लिए इन्हें आमड़े तोड़कर ले जाने पड़े।

२

बगीचेका संकल्प उनके और-और अनेक संकल्पोंकी तरह सीमा-हीन कल्पना-क्षेत्रमें कब कहाँ खो गया, अमल और चारु दोनोंमेंसे किसीको कुछ मालूम ही नहीं हुआ।

और अब, अमलकी रचनाएँ ही उन दोनोंकी आलोचना और परामर्शका प्रधान विषय बन गईं। अमल आकर कहता, "भाभी, एक बहुत ही अच्छा भाव दिमागमें आया है!"

चारु उत्साहित हो उठती, और कहती, "चलो, अपने दक्षिणके बरामदेमें, वहीं सुनूंगी ; यहाँ अभी मन्दा पान लगाने आयेगी।"

चारु कश्मीरी बरामदेमें एक पुरानी बेंतकी आरामकुर्सीपर बैठ जाती, और अमल रेलिंगके नीचेवाले ऊँचे हिस्सेपर बैठकर पैर फैला देता।

अमलके लिखनेके विषय अकसर सुनिर्दिष्ट नहीं होते ; लिहाजा कोई बात स्पष्ट करके कहना उसके लिए कठिन था। अनेक विषयोंकी खिचड़ी पकाकर वह जो भी कुछ कहता, उसे साफ-साफ समझ लेना किसीके भी बूतेकी बात नहीं। अमल खुद ही बार-बार कहा करता रहता, "भाभी, मैं तुम्हें अच्छी तरह समझा नहीं सकता।"

चारु कहती, "नहीं, मैं बहुत-कुछ समझ रही हूं। तुम इसे पूरा लिख डालो, देर न करो।"

चारु कुछ समझकर और कुछ बिना-समझे, बहुत-कुछ कल्पना करके और बहुत-कुछ अमलके व्यक्त करनेके आवेगसे उत्तेजित होकर मन-ही-मन न-जाने ऐसी कौनसी चीज बनाकर खड़ी कर लेती कि उससे उसे सुख मिलता, आराम मिलता और मारे आग्रहके वह अधीर हो उठती।

चारु उसी दिन शामको ही पूछ बैठती, "कहाँ तक लिख लिया ?"

अमल कहता, "इतनी जल्दी कहीं लिखा जा सकता है !"

चारु दूसरे दिन सवेरे फिर जरा-कुछ नाराजीके स्वरमें पूछती, "तुमने उसे पूरा लिखा नहीं अभी ?"

अमल कहता, "ठहरो, और जरा सोच लेने दो।"

चारु नाराज होकर कहती, "तो रहने दो।"

शामको वही गुस्सा इकट्ठा हो-होकर जब बातचीत बन्द करानेकी नौबत ला देता तब अमल रूमाल निकालनेके बहाने जेबमेंसे लिखे-हुए कागजका कुछ हिस्सा निकालता। उसी क्षण चारुका मौन भंग हो जाता ; और कह उठती, "वो क्या है, लिख तो लिया है ! मुझसे झूठ ! नहीं दिखाओगे ?"

अमल कहता, "अभी खतम नहीं हुआ। और थोड़ा-सा लिखके पीछे सुनाऊँगा तुम्हें।"

चारु कहती, "नहीं, अभी सुनाना होगा तुम्हें !"

अमल 'अभी सुनाने'के लिए ही व्यस्थ रहता ; पर चारुसे कुछ देर तक छीना-झपटी कराये बिना वह सुनाना नहीं चाहता। थोड़ी छीना-झपटीके बाद अमल कागज हाथमें लेकर पन्ने ठीक कर लेता, और पेन्सिलसे दो-एक संशोधन करता रहता ; और तब तक चारु पुलकित कुतूहलसे, जलके भारसे झुके-हुए बादलकी तरह, उन कागजोंपर झुकी ही रहती।

अमल दो-चार पैराग्राफ जब जितना लिखता उतना ही उसे हाल-की-हाल चारुको सुना देना पड़ता। बिना लिखे-हुए अवशिष्ट अंशका आलोचना और कल्पनाके द्वारा मन्थन चलता रहता।

अब तक ये दोनों तरुण-हृदय आकाश-कुसुमके चयनमें ही उलझे हुए थे ; किन्तु अब काव्य-कुसुमकी खेती शुरू हो जानेसे और-सब बातें भूल गये।

एक दिन तीसरे पहर अमल कालेजसे लौटा, तो उसकी जेब कुछ ज्यादा भारी-सी मालूम हुई। अमल जब घरमें घुसा, तब चारुने अन्तःपुरकी खिड़कीसे उसकी जेबकी पूर्णता देख ली।

अमल और-और दिन कालेजसे लौटकर घरके भीतर पहुंचनेमें देर न करता था ; पर आज वह अपनी भरी जेब लिये बाहरके कमरेमें ही रह गया, जल्दी भीतर जानेका नाम तक न लिया।

चारुने अन्तःपुरके सीमान्त तक आकर कई बार चूड़ियाँ बजाई, पर किसीने सुना ही नहीं। अन्तमें वह कुछ नाराज होकर अपने बरामदेमें जा बैठी ; और मन्मथ दत्तकी एक किताब हाथमें लेकर पढ़नेकी कोशिश करने लगी।

मन्मथ दत्त नवीन लेखक है। उसकी लेखन-शैली बहुत-कुछ अमलके ढंगकी है ; और इसीलिए अमल कभी उसकी प्रशंसा नहीं करता। बल्कि वह कभी-कभी चारुके सामने उसकी रचना विकृत उच्चारणसे पढ़कर मजाक उड़ाया करता ; और चारु उसके हाथसे किताब छीनकर अवज्ञाके साथ दूर फेंक दिया करती।

किन्तु आज, जब उसने अमलके पैरोंकी आहट सुनी, तो उसी मन्मथ

दत्तका 'कलकंठ' काव्य उसने अपने मुँहके सामने रखकर गहरी दिलचस्पीके साथ पढ़ना शुरू कर दिया।

अमल बरामदेमें आया, किन्तु चारुने उसकी तरफ जरा भी ध्यान न दिया।

अमल बोला—"भाभी, क्या पढ़ रही हो?"

चारुको निरुत्तर देख अमल उसकी चौकीके पीछे आकर खड़ा हो गया; और पुस्तकका नाम पढ़कर बोला—"अच्छा! मन्मथ दत्तका 'गलगण्ड'!'

चारुने कहा—"ओःह, परेशान न करो, पढ़ने दो मुझे!"

पीठके पास खड़ा-खड़ा अमल व्यंगके स्वरमें पढ़ने लगा—"मैं तृण हूं, क्षुद्र तृण! भाई रक्ताम्बर राज-वेशधारी अशोक, मैं मात्र एक तृण हूं। मेरे फूल नहीं, मेरे छाया नहीं, अपना मस्तक मैं आकाशमें नहीं उठा सकता, बसन्तकी कोयल मेरा आश्रय लेकर 'कुहू-कुहू' स्वरसे जगतको उन्मत्त नहीं करतीं, – फिर भी, भाई अशोक, तुम अपनी उस पुष्पित उच्च शाखासे मेरी उपेक्षा न करो। तुम्हारे पाँवों पड़ता हूं, मैं तृण हूं, तो भी मुझे तुम तुच्छ न समझो!"

अमलने इतना अंश पुस्तकसे पढ़ा; और फिर वह अपनी तरफसे बना-बनाकर व्यंगकी ध्वनिमें कहने लगा—"मैं केलोंकी गहर हूं, भाई कद्दू! गृह-छप्पर-बिहारी भाई कद्दू, मै नितान्त ही कच्चे केलेकी गहर हूं!"

चारु कौतूहलके मारे गुस्सा न हो सकी, हँसके उठ बैठी; और किताब फेंककर बोली—"तुम बड़े ईर्षालु हो, अपनी रचनाके सिवा और-किसीकी कोई भी चीज तुम्हें पसन्द नहीं आती।"

अमलने कहा—"लेकिन तुम्हारी तो अपूर्व उदारता है! कहीं तृण भी मिल जाय तो तुम उसे तुरत निगल जाना चाहती हो!"

चारु—"अच्छा महाशयजी, मजाक करनेकी जरूरत नहीं, – जेबमें क्या है, सो जल्दी निकालिये?"

अमल—"अच्छा, तुम्हारा क्या अन्दाज है?"

बहुत देर तक चारुको तंग करके अमलने जेबमें से 'सरोरुह' नामक प्रसिद्ध मासिकपत्र निकाला।

चारुने समझा कि जरूर इसमें अमलकी वह 'मेरी कापी' नामक रचना प्रकाशित हुई होगी ।

उसे देखकर वह चुप रही । अमलने सोचा था कि भाभी बहुत खुश होगी । मगर खुशीका विशेष कोई लक्षण न देखकर उसने कहा—"समझीं भाभी, 'सरोरुह'में कोई ऐरू-गैरू लेख नहीं निकलते !"

अमल कुछ ज्यादा कह गया । असलमें, किसी प्रकार चलने-लायक लेख हाथ पड़नेपर सम्पादक उसे छापे बिना नहीं छोड़ते । पर अमलने चारुको समझा दिया कि सम्पादक बहुत ही कड़े आदमी हैं, एक सौ रचनाओंमेंसे मुश्किलसे एक प्रकाशन-योग्य समझकर छापते हैं ।

सुनकर चारु खुश होनेकी कोशिश करने लगी ; पर खुश न हो सकी । किस वजहसे उसके मनमें चोट पहुँची, इसे उसने समझ देखनेकी कोशिश की ; पर कोई संगत कारण न निकाल सकी ।

अमलकी रचना असलमें अमल और चारु इन्हीं दोनोंकी सम्पत्ति है । अमल लेखक है और चारु पाठिका । इस गोपनतामें ही उसका प्रधान रस है । उनकी रचनाओंको सभी-कोई पढ़ें और बहुतसे लोग उसकी प्रशंसा करें, इसकी वेदना चारुको क्यों इतना दुःख दे रही थी, सो वह अच्छी तरह न समझ सकी ।

किन्तु एक पाठकसे लेखककी आकांक्षा ज्यादा दिनों तक नहीं मिट सकती । अमलने अपनी रचनाएँ छपवाना शुरू कर दिया ; और प्रशंसा भी प्राप्त की ।

बीच-बीचमें भक्तोंकी चिट्ठियाँ भी आने लगीं । अमल उन्हें अपनी भाभीको दिखाया करता । चारु उससे खुश भी होती, और दुःखित भी । अब अमलको लिखनेमें प्रवृत्त होनेके लिए एकमात्र चारुके ही उत्साह और उत्तेजनकी आवश्यकता नहीं रही । अमलको बीच-बीचमें कभी-कदा बिना नाम-धामकी रमणियोंकी चिट्ठियाँ भी मिलने लगीं । उनके लिए चारु उसका मजाक उड़ाती, पर आराम नहीं पाती । सहसा उनकी कमेटीके बन्द द्वारको खोलकर देशकी पाठक-मण्डली उन दोनोंके बीच आ खड़ी हुई ।

भूपतिने एक दिन फुरसत मिलनेपर बातके सिलसिलेमें कहा—"अपना अमल इतना अच्छा लिख लेता है, सो मुझे मालूम ही न था !"

भूपतिकी प्रशंसासे चारु खुश हुई। अमल भूपतिका आश्रित है; पर अन्य आश्रितोंसे उसमें पार्थक्य है – यह बात पतिके समझ लेनेसे चारुने मानो गर्वका अनुभव किया। उसके मनका भाव यह था कि अमलको क्यों मैं इतना स्नेह और आदर करती हूं, सो इतने दिनों बाद तुमलोग समझे। और मैं बहुत दिन पहले ही अमलको समझ गई थी। अमल किसीके लिए भी अवज्ञाका पात्र नहीं। चारुने पूछा—"तुमने उसके लेख पढ़े हैं ?"

भूपतिने कहा—"हाँ, नहीं, ठीक पढ़े तो नहीं; समय ही नहीं मिलता, पर अपना निशिकान्त पढ़के खूब तारीफ कर रहा था। वह साहित्यिक लेख अच्छा समझ लेता है।"

चारु एकान्त मनसे यह चाहती थी कि भूपतिके मनमें अमलके प्रति एक सम्मानका भाव जाग उठे।

२

उमापति भूपतिको अखबारके ग्राहकोंको सालमें कई तरहके उपहार देनेकी बात समझा रहा था, पर भूपतिकी समझमें यह किसी भी तरह नहीं आ रहा था कि उपहारसे किस तरह नुकसानसे बचकर लाभ हो सकता है।

चारु एक बार कमरेमें घुसी; और उमापतिको देखकर लौट गई। फिर कुछ देर बाद घूम-फिरकर कमरेमें आई, तो उसने देखा कि दोनों जने किसी हिसाबके बारेमें बहस कर रहे हैं।

उमापति चारुका अधैर्य देखकर किसी बहानेसे बाहर चला गया; और भूपति हिसाबमें सर खपाने लगे।

चारुने कमरेके भीतर आकर कहा—"अभी तक शायद तुम्हारा काम खतम नहीं हुआ। दिन-रात उसी एक अखबारको लेकर कैसे तुम्हारा समय कटता है, मैं यही सोचती हूं !"

भूपतिने हिसाब हटाकर रख दिया, और जरा मुसकरा दिये। मन ही मन सोचने लगे, 'वास्तवमें चारुकी तरफ ध्यान देनेका मुझे वक्त ही नही मिलता, यह बड़ा अन्याय है मेरा। उस बेचारीके पास समय बितानेका कुछ जरिया ही नहीं।'

भूपतिने स्नेह-भरे स्वरमें कहा—"आज तुम्हारी पढ़ाई बन्द है मालूम होता है। मास्टर साहब शायद भागे हुए हैं? तुम्हारी पाठशालामें सब उलटे नियम हैं; – छात्रा पोथी-पत्रा लेकर तैयार है, मास्टरका पता नही! आजकल अमल तुम्हें नियमितरूपसे नही पढ़ाता क्या?"

चारुने कहा—"मुझे पढ़ाकर अमलका समय नष्ट करना क्या उचित है? अमलको क्या तुमने एक मामूली प्राइवेट-ट्यूटर समझ रखा है?"

भूपतिने चारुकी कमर पकड़कर अपनी ओर खीचते हुए कहा—"यह क्या मामूली प्राइवेट-ट्यूटरी हो गई? तुम जैसी भाभीको अगर मै पढ़ा सकता, तो—"

चारु बोली—"ओ-हो! बस रहने दो, तुम अब कुछ न कहो! पति, होनेपर ही यह हाल है, तो और कुछ—"

भूपतिको जरा-कुछ चोट पहुंची, बोले—"अच्छा, कलसे मै तुम्हें जरूर पढ़ाऊँगा। अपनी किताबें तो ले आओ जरा, क्या पढ़ती हो, जरा देख लूं?"

चारु—"रहने भी दो, बहुत हो गया, तुम्हें अब पढ़ानेकी जरूरत नही। कुछ देरके लिए अपने अखबारका हिसाब जरा रहने दोगे? अभी तुम और किसी तरफ ध्यान दे सकोगे या नही, सो बताओ?"

भूपति—"जरूर जरूर! इस वक्त तुम मेरे मनको जिस तरफ घुमाना चाहो, घुमा सकती हो।"

चारु—"अच्छी बात है, तो अमलका यह लेख पढ़ देखो, कैसा अच्छा लिखा है! सम्पादकने अमलको लिखा है कि „इस लेखको पढ़कर नवगोपाल बाबूने उसे भारतका रस्किन बताया है!"

सुनकर भूपतिने कुछ संकुचित-भावसे अखबार हाथमें ले लिया। खोलकर देखा, लेखका नाम है 'असाढ़का चाँद'।

पिछले दो हफ्तेसे भूपति भारत-सरकारके बजटकी समालोचना करनेके लिए बड़े-बड़े ऑकड़े बना रहे थे। उसके अङ्क बहुत-पैरवाले कीड़ोंकी तरह उनके दिमागके अनेक छेदोंमें घूम-फिर रहे थे। ऐसे समयमें सहसा देशी भाषामें लिखे हुए 'आषाढ़का चाँद' लेख आद्योपान्त पढ़नेके लिए उसका मन तैयार न था। और रचना भी छोटी न थी।

रचनाका प्रारम्भ इस तरह था—"आषाढ़का चाँद, क्यों तू सारी रात बादलोंमें इस तरह छुपा-छुपा फिरता है! मानो स्वर्गलोकसे तू कुछ चुरा लाया है, मानो अपना कलंक ढकनेके लिए तुझे कही स्थान न मिल रहा हो! फागुनके महीनेमें जब आकाशके किसी कोनेमें मुट्ठी-भर बादल नही थे, तब संसारकी ऑखोंके सामने तू निर्लज्जकी तरह खुले आकाशमें अपनेको प्रकट किये हुए था; और आज, आज तेरी वही बिखरी-हुई हॅसी बच्चेके स्वप्नकी तरह, प्रियाकी स्मृतिकी तरह, सुरेश्वरी शचीके अलक-विलम्बित मुक्ताहारकी तरह—" इत्यादि।

भूपतिने सिर खुजाते हुए कहा—"अच्छा लिखा है! पर मुझे क्यों देती हो? यह सब कवित्वकी बातें मै क्या समझूॅ!"

चारुने संकुचित होकर भूपतिके हाथसे पत्रिका छीन ली, बोली—"तो तुम क्या समझते हो?"

भूपतिने कहा—"मैं इस दुनियाका आदमी हूॅ; ज्यादासे ज्यादा मै आदमीको समझता हूॅ।"

चारुने कहा—"आदमीकी बात क्या साहित्यमें नहीं लिखी रहती?"

"गलत लिखी रहती है। इसके सिवा, जब कि आदमी सशरीर मौजूद है तो बनावटी बातोंमें उसे ढूंढ़नेसे क्या फायदा?" इतना कहकर भूपति चारुलताकी ठोड़ी पकड़कर कहने लगे—"यही, जैसे मै तुम्हें समझता हूॅ, इसके लिए क्या 'मेघनाद-वध' या 'चण्डीदास' पढ़नेकी जरूरत है?"

भूपतिको इस बातका अभिमान था कि वे काव्य नहीं समझते। फिर भी अमलकी रचनापर, अच्छी तरह बगैर पढ़े ही, उनकी श्रद्धा थी। भूपति सोचते कि कहनेकी बात कुछ नहीं, फिर भी बना-बनाकर इतनी अनर्गल

बातें कह डालना, यह तो मुझसे सिर धुन डालनेपर भी न कही जाती। अमलके भीतर इतनी शक्ति थी, सो कौन जानता था ?

भूपति अपनी रसज्ञताको अस्वीकार करते थे ; किन्तु साहित्यके प्रति उनकी तरफसे कंजूसी नहीं थी। कोई गरीब लेखक किताब छपानेके लिए उनसे सहायता माँगता, तो वे उसी वक्त और उदारताके साथ रुपये दे देते ; और खास तौरसे सिर्फ इतना कह दे कि 'मुझे समर्पण न की जाय।' देशके छोटे-बड़े सभी साप्ताहिक और मासिक पत्र, प्रसिद्ध अप्रसिद्ध, पाठ्य अपाठ्य सभी तरहकी किताब वे खरीद लिया करते। और जिक्र छोड़नेपर कह दिया करते, "एक तो मै पढ़ता नहीं, उसपर अगर खरीदूं भी नहीं तो पाप भी लगेगा और प्रायश्चित्त भी न होगा।" वे खुद पढ़ते नहीं थे, इसीसे बुरी किताबोंके प्रति उनका रत्ती-भर भी विद्वेष नहीं था। यही वजह है कि उनकी लाइब्रेरी देशी पुस्तकोंसे भरी पड़ी थी।

अमल भूपतिको अंगरेजी प्रूफ देखनेमें सहायता करता था। किसी एक कापीकी दुर्बोध्य लिपि दिखानेके लिए वह कॉपियोंका एक बंडल लेकर उनके कमरेमें घुसा।

भूपतिने हँसते हुए कहा—"अमल, तुम 'आषाढ़के चाँद' और 'भादोंके पके ताड़'पर जितना चाहो लिखो, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं ; मैं किसीकी स्वाधीनतापर हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। पर मेरी स्वाधीनतापर क्यों हस्तक्षेप किया जाता है ? तुम्हारी भाभी मुझे तुम्हारी रचनाएँ बगैर पढ़ाये नहीं छोड़तीं, यह कैसा अत्याचार है !"

अमलने हँसकर कहा—"यह क्या, भाभी, मेरी रचनाओंसे तुम भाई साहबपर जुल्म करनेकी तरकीब निकाल लोगी, ऐसा जानता तो मै कुछ लिखता ही नहीं।"

साहित्य-रससे विमुख भूपतिके आगे लाकर उसकी अत्यन्त दर्द-भरी रचनाओंका अनादर करानेसे अमल मन-ही-मन चारुपर नाराज ही हुआ ; और चारु भी उसी वक्त इस बातको समझ जानेसे व्यथित हुई। और

बातको दूसरी तरफ घुमानेके लिए भूपतिसे बोली—"तुम अपने भइयाका ब्याह तो करा दो देखूं, तब फिर लेख-वेखका उपद्रव नहीं सहना पड़ेगा !"

भूपतिने कहा—"आजकलके लड़के हम जैसे बेवकूफ नहीं हैं ! उनका जितना कवित्व है, सब लेखोंमें ही है, – काममें वे खूब सयाने हैं ! भला, आज तक अपने देवरको तुम ब्याहके लिए भी राजी करा सकीं ?"

चारुके चले जानेपर भूपतिने अमलसे कहा—"अमल, मुझे अपने इस अखबारके झगड़ेमें रहने दो। चारु बेचारी बड़ी अकेली-सी रहती है। कोई काम-धन्धा नहीं, बीच-बीचमें मेरे पास आती है और झाँक-झूँककर चली जाती है। क्या करूं बताओ ? तुम उसे जरा पढ़ने-लिखनेमें लगाये रख सको तो अच्छा हो। बीच-बीचमें उसे अंगरेजी काव्योंसे कुछ अनुवाद करके सुनाया करो, तो उपकार भी हो और अच्छा भी लगे। चारुमें साहित्यिक रुचि तो काफी है।"

अमल बोला—"सो तो ठीक है। भाभी अगर और-जरा पढ़-लिख ले, तो मेरा विश्वास है कि वे खुद बहुत अच्छा लिखने लगें।"

भूपतिने हँसकर कहा—"इतनी आशा मै नहीं करता। पर इतना जरूर है कि चारु आजकलकी साहित्यिक रचनाओंकी अच्छाई-बुराई मुझसे ज्यादा समझती है।"

अमल—"उनमें कल्पना-शक्ति काफी है। खासकर स्त्रियोंमें यह बात कम पाई जाती है।"

भूपति—"पुरुषोंमें भी कम पाई जाती है, – इसका सबूत मै हूँ ! अच्छा, तुम अगर अपनी भाभीको कुछ बना सको, तो मैं तुम्हें इनाम दूँगा।"

अमल—"क्या दोगे, बताओ न, भाई साहब ?"

भूपति—"तुम्हारी भाभीके लिए एक देवरानी ढूंढ़ लाऊंगा कहींसे।"

अमल—"फिर मुझे उसे बनानेमें लग जाना पड़ेगा ! सारी जिन्दगी क्या बनाने-बनानेमें ही बिता दूंगा !"

दोनों भाई आधुनिक ठहरे ; बात करनेमें सकुचाते नहीं।

४

पाठक-समाजमें नाम पैदा करके अमलने अब अपना मस्तक पहलेसे बहुत कुछ ऊंचा कर लिया है। पहले वह स्कूलके लड़केकी तरह रहा करता था; अब मानो वह समाजका गण्य-मान्य आदमी जैसा हो गया है। बीच-बीचमें साहित्य-सभामें वह निबन्ध पढ़ा करता है। सम्पादक और सम्पादकके दूत उसके पास आया करते हैं, और उसे निमन्त्रित करके खिलाते-पिलाते भी हैं। नाना सभाओंके सदस्य और सभापति बनानेके लिए लोग उससे अनुरोध भी किया करते हैं। घरके नौकर-चाकर और आत्मीय-स्वजनोंकी दृष्टिमें भी उसका सम्मान पहलेसे बहुत-कुछ ऊंचा हो गया है।

किन्तु मन्दाकिनीने अब तक उसे कोई खास आदमी नहीं समझा। अमल और चारुके हास्यालाप और आलोचनाको महज लड़कपन समझकर, उसकी उपेक्षा करके, वह पान लगाती और घरका काम-काज किया करती थी। साथ ही अपनेको वह उनलोगोंसे श्रेष्ठ और गृहस्थीके लिए अधिक आवश्यक समझती थी।

अमलके पान खानेकी कोई हद न थी। मन्दाकिनीपर पान लगानेका भार होनेसे वह पानोंकी इस फिजूल-खर्चीसे नाखुश रहती थी। चारु और अमल षड़यन्त्र करके मन्दाका पानोंका भंडार अकसर लूट लिया करते थे, और अन्तमें यह उनके मनोविनोदका एक जरिया हो गया। मगर इन शौकीन लुटेरोंका लूट-खसोटका मजाक मन्दाके लिए मनोरंजक न था।

असलमें बात यह है कि एक आश्रित दूसरे आश्रितको प्रसन्नदृष्टिसे नहीं देख सकता। अमलके लिए मन्दाको जितना काम-काज करना पड़ता, उससे मानो वह अपनेको कुछ अपमानित-सी समझती। चारु अमलका पक्ष करती थी, इसलिए उससे मुंह खोलकर कुछ कहते नहीं बनता था, पर अमलकी लापरवाही करनेकी कोशिश वह हमेशा किया ही करती थी। और मौका मिलते ही दास-दासियोंके आगे भी गुप्तरूपसे अमलकी बदनामी करनेसे नहीं चूकती। और वे भी उसमें भाग लिया करते थे।

किन्तु जब अमलका अभ्युत्थान शुरू हुआ, तो मन्दा चौंकी। अमल अब वह अमल नहीं रहा ! अब उसकी संकुचित नम्रता बिलकुल ही जाती रही, और दूसरोंकी अवज्ञा करनेका अधिकार भी मानो उसीके हाथ आ गया। संसारमें प्रतिष्ठा प्राप्त करके जो पुरुष बिना संशयके निःसंकोचभावसे अपनेको जाहिर कर सकता है, और जिसने एक निश्चित अधिकार प्राप्त कर लिया है, वह समर्थ पुरुष सहज ही नारीकी दृष्टि आकर्षित कर सकता है। मन्दाने जब देखा कि अमल चारों तरफसे श्रद्धा पा रहा है, तब उसने भी अमलके ऊंचे मस्तककी ओर मुंह उठाकर देखा। अमलके तरुण चेहरेपर आई-हुई नव-गौरवकी गर्वोज्ज्वल दीप्तिने मन्दाकी आँखोंमें एक तरहका मोह पैदा कर दिया; और तब अमलको मानो उसने नई तरहसे देखा।

अब किसीको पान चुरानेकी जरूरत नहीं पड़ती। अमलके ख्याति-लाभसे चारुको इतना-और नुकसान हुआ कि उन दोनोंका षड़यन्त्रका कौतुक-बन्धन विच्छिन्न हो गया। पान अब अमलके आगे अपने-आप ही पहुंचने लगे, कभी कोई कमी नहीं पड़ती।

इसके सिवा, उन दोनोंके गठित दलमें जो मन्दाकिनीको नाना कौशलोंसे दूर रखनेका आनन्द था, उसके भी नष्ट होनेकी नौबत आ पहुंची। मन्दाको अब अलग रखना कठिन हो गया। अमल सिर्फ चारुको ही अपनी एकमात्र साथिन और समझदार समझे, यह बात मन्दाको अच्छी नहीं लगने लगी। इसके पहले, उन दोनोंकी तरफसे की जानेवाली उपेक्षाका अब वह मय ब्याजके बदला लेना चाहती है। लिहाजा, अमल और चारुकी भेंट-मुलाकात होते ही अब वह बीचमें अपनी छाया डालकर 'ग्रहण' लगा देती है। सहसा मन्दाके इस परिवर्तनसे चारु और अमलको हास्य-परिहास करनेका मौका मिलना भी दुश्वार हो गया।

मन्दाकिनीका यह अनाहूत प्रवेश चारुको जितना अरुचिकर मालूम हुआ अमलको शायद उतना न भी मालूम हुआ हो। विमुख रमणीका मन क्रमशः उसकी तरफ झुक रहा है यह जानकर भीतर-ही-भीतर वह एक तरहका आग्रह अनुभव करने लगा।

परन्तु चारु जब दूरसे मन्दाको देखकर तीव्र मृदुस्वरसे कहती, "वो आ रही है !" तब अमल भी कह देता, "आ गई क्या, परेशान कर डाला !" संसारके और-सबोंके प्रति असहिष्णुता प्रकट करना इनका एक दस्तूर-सा था, अमल उसे अचानक कैसे छोड़ देता ! अन्तमें मन्दा जब पास आ जाती, तब मानो जबरदस्ती सौजन्य दिखानेके लिए वह कहता, "क्या खबर है, मन्दा भाभी ? आज अपने पानदानमें चोरी-डकैतीके कोई लक्षण देखे ?"

मन्दा कहती, "जब कि चाहते ही पा जाते हो, लालाजी, तो चुरानेकी क्या जरूरत ?"

अमल कहता, "माँगकर पानेकी अपेक्षा उसमें आनन्द जो ज्यादा है !"

मन्दा कहती, "तुमलोग क्या पढ़ रहे थे, पढ़ो न ! रुक क्यों गये ? सुननेमें मुझे अच्छा लगता है ।"

इसके पहले मन्दाको पाठानुरागके लिए ख्याति प्राप्त करनेकी गरज कतई नही थी, किन्तु "कालोहि बलवत्तरः !"

चारु नही चाहती कि आरसिका मन्दाके सामने अमल कुछ पढ़े, किन्तु अमलकी इच्छा रहती कि मन्दा भी उसकी रचना सुने ।

चारु कहती, "अमलने 'कमलाकान्तके दप्तर' की समालोचना लिखी है, सो क्या तुम्हारी समझमें—"

मन्दा कहती, "अरे मै मूरख ही सही, तो क्या बिलकुल समझ ही नहीं सकती !"

इसपर और-एक दिनकी बात अमलको याद आ गई । चारु और मन्दा दोनो ताश खेल रही थी । अमल अपनी रचना हाथमें लिये-हुए खेल-सभामें दाखिल हुआ । चारुको अपनी रचना सुनानेके लिए वह अधीर हो रहा था । खेल खतम न होते देख वह मन-ही-मन गुस्सा होने लगा । अन्तमें उसने कहा—"तो तुमलोग खेलती रहो, भाभी, मै अखिल-बाबूको जाकर अपनी रचना सुना आऊँ ।"

चारुने अमलका दुपट्टा पकड़ लिया, बोली—"उफ्, बैठो न जरा, कहाँ जाते हो ?" और झटपट हारकर उसने खेल खतम कर दिया ।

मन्दाने कहा—"तुम पढ़ना शुरू करोगे शायद, तो मैं उठूं।"

चारुने शराफत दिखाकर कहा—"क्यों, तुम भी सुनो न, भाभी !"

मन्दाने कहा—"नहीं बहन, मैं तुमलोगोंका पढ़ना खाक-पत्थर कुछ समझती ही नहीं ; मुझे तो नींद आने लगती है !" और वह असमयमें खेल खतम हो जानेसे दोनोंपर बहुत ही नाराज होकर उठ गई।

वही मन्दा आज 'कमलाकान्त' की समालोचना सुननेके लिए उत्सुक है !

अमलने कहा—"यह तो बड़ी खुशीकी बात है भाभी, तुम सुनोगी, यह तो मेरा सौभाग्य है !"—इतना कहकर उसने पन्ने उलटकर पढ़नेकी तैयारी की। रचनाके आरम्भमें ही उसने काफी रस उँड़ेला था, उतना हिस्सा छोड़ देनेको उसका जी नहीं चाहा।

चारु जल्दीसे कह उठी—"लालाजी, तुमने तो कहा था कि जाह्नवी लाइब्रेरीसे कुछ पुराने मासिकपत्र ला दोगे ?"

अमलने कहा—"आज नहीं।"

चारु बोली—"आज ही तो ! खूब रहे, भूल गये, क्यों ?"

अमलने कहा—"भूल क्यों जाऊंगा ? तुम्हींने तो कहा था—"

चारुने कहा—"अच्छा-अच्छा, मत लाओ ! तुमलोग पढ़ो, मैं जाती हूं पारसको लाइब्रेरी भेज दूं जाकर।"—कहकर चारु उठ गई।

अमलको विपत्तिकी आशंका हुई। मन्दा मन-ही-मन समझ गई, और दूसरे ही क्षण चारुके प्रति उसका मन विषाक्त हो उठा। चारुके चले जानेपर अमल दुबिधामें पड़ गया कि वह उठे या नहीं। इतनेमें मन्दाने जरा-कुछ हँसकर कहा—"जाओ भाई, रूठी भाभीको मनाओ ! चारु गुस्सा हो गई है। मुझे लेख सुनाकर फजूल परेशानीमें पड़ोगे !"

इसके बाद अमलके लिए उठना बहुत ही मुश्किल हो गया। अमलने चारुसे जरा रुष्ट होकर मन्दासे कहा—"क्यों, परेशानी काहेकी !" और पढ़ना शुरू कर दिया।

मन्दाने दोनों हाथोंसे उसकी कापी ढककर कहा—"जरूरत नहीं, भइया, मत पढ़ो।" इतना कहकर, मानो वह आँसू रोकती हुई अन्यत्र चली गई।

५

चारु न्योता खाने गई थी। मन्दाकिनी घरमें बैठी जूड़ा बाँध रही थी। इतनेमें 'भाभी' कहता-हुआ अमल भीतर चला आया। मन्दाकिनी निश्चित जानती थी कि चारुके न्योतेमें जानेकी बात अमल जानता ही होगा, वह हँसकर बोली—"अहा, अमल-बाबू, किसकी खोजमें आये थे, और किससे भेंट हो गई! तुम्हारी तकदीर ही ऐसी है!"

अमलने कहा—"गधेके लिए जैसी घास बाईं तरफकी, वैसी दाहनी तरफकी; दोनों समान आदरणीय हैं!" और वहीं बैठ गया। फिर थोड़ी देर बाद बोला—"मन्दा-भाभी, तुम अपने देशकी कोई कहानी कहो, मैं सुनूंगा।"

अमल लिखनेका विषय चुननेके लिए सबकी सब बातें दिलचस्पीके साथ सुना करता है। इसलिए मन्दाकी अब वह पहलेकी तरह उपेक्षा नहीं करता। मन्दाका मनस्तत्त्व और उसका इतिहास अब उसके लिए दिलचस्पीकी चीज है। कहाँ उसकी जन्मभूमि है, कैसे उसका जीवन बीता है, कब उसका ब्याह हुआ, इत्यादि सभी बातें वह ढूंढ़-ढूंढ़कर पूछने लगा। मन्दाके क्षुद्र जीवन-वृत्तान्तके सम्बन्धमें उसे इतना कुतूहल क्यों है, यह बात उसने प्रकट नहीं की; और मन्दा भी अपने आनन्दमें अपनी सब बातें कहती ही चली जाने लगी। बीच-बीचमें वह कहती भी जाती कि 'क्या बक रही हूं, कोई ठीक नहीं!' फिर भी रुकना नहीं चाहती।

अमल भी उसे उत्साह देते हुए कहता, "नहीं, मुझे अच्छा लग रहा है, तुम कहती जाओ।"

मन्दाके पिताके यहाँ एक गुमश्ता था, वह अपनी दूसरी स्त्रीके साथ झगड़ा करके किसी-किसी दिन रूठकर अनशन-व्रत ग्रहण किया करता था। अन्तमें भूखके मारे तंग आकर एक दिन वह मन्दाके घर किस तरह छिपकर खाने आया और अचानक स्त्रीने उसे कैसे पकड़ लिया,—यह किस्सा चल रहा था; और अमल दिलचस्पीके साथ सुनते-सुनते सकौतुक हँस रहा था। इतनेमें कमरेमें चारु आ गई।

कहानीका सिलसिला टूट गया। चारुके आगमनसे सहसा एक जमी हुई सभा भंग हो गई ; और चारुको यह स्पष्ट भास गया।

अमलने पूछा—"भाभी, इतनी जल्दी लौट आई जो ?"

चारुने कहा—"हूं ! बहुत जल्दी लौट आई !" इतना कहकर वह जा ही रही थी कि अमल बोल उठा—"अच्छा ही किया, बचा लिया मुझे। मैंने तो सोचा कि न-जाने कब लौटोगी ! मन्मथ दत्तकी 'शामकी चिड़िया' नई पुस्तक निकली है, तुम्हें सुनानेके लिए लाया हूं।"

चारुने कहा—"अभी रहने दो, मुझे काम है।"

अमल बोला—"काम हो तो मुझे हुक्म दो, मैं किये देता हूं।"

चारु जानती थी कि अमल आज मन्मथकी नई किताब खरीद लायेगा और उसे सुनायेगा। अमलके मनमें ईर्षा पैदा करनेके लिए उसने सोच रखा था कि वह उस किताबकी खूब प्रशंसा करती जायगी ; और अमल उस किताबको विकृत करके पढ़कर उसका मजाक उड़ाता जायगा। इन्हीं सब बातोंकी कल्पना करके चारु अधैर्यवश, निमन्त्रकारियोंके अनुनय-विनयकी परवाह न कर, अस्वस्थताका बहाना करके असमयमें घर लौट आई थी। किन्तु घर आकर उसे ऐसा मालूम होने लगा कि वहाँ बड़े मजेमें थी, वहाँसे चला आना अन्याय हुआ। सोचने लगी, 'मन्दा भी तो कुछ कम बेहया नहीं ! एक घरमें अकेली बैठी अमलके साथ दाँत निकालकर हँस रही है ! लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?' परन्तु इस बातपर मन्दाको फटकारना चारुके लिए बहुत कठिन था। कारण, मन्दा भी अगर ठीक वैसा ही दृष्टान्त देकर जवाब दे तो ? किन्तु वह दूसरी बात है, और यह दूसरी। वह अमलको लिखनेमें उत्साह देती है, अमलके साथ साहित्यिक आलोचना करती है ; किन्तु मन्दाका तो यह उद्देश्य हो ही नहीं सकता। उसने सोचा, 'मन्दा निःसन्देह इस सरल-हृदय युवकको मुग्ध करनेके लिए जाल बिछा रही है।' और इस भयानक विपत्तिसे अमलकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। पर अलमको इस मायाविनीका भीतरी अभिप्राय वह कैसे समझावे ? समझानेसे कहीं उसका प्रलोभन निवृत्त न होकर उलटा बढ़ गया तो ?

और, भइया बेचारे ? वे तो उसके पतिके अखबारके लिए ही दिन-रात मेहनत करते-करते मरे जा रहे हैं, और मन्दाका यह हाल कि एक कोनेमें बैठी अमलको लुभानेकी सोच रही है ! भइया तो बिलकुल निश्चिन्त है। मन्दापर उनका अथाह विश्वास है। इन सब बातोको अपनी ऑखोंसे देखकर भला वह कैसे स्थिर रह सकती है ? बड़ा अन्याय है यह ! लेकिन पहले तो अमल ऐसा नही था ! जबसे लिखना शुरू करके नाम पैदा किया है, तभीसे यह सब अनर्थ दिखाई देने लगे हैं। चारु ही तो उसके लिखनेमें जड है। बुरे क्षणमें अमलको लिखनेका उत्साह उसीने दिया था। अब क्या अमलपर उसका पहलेकी तरह जोर चलेगा ? अमलको अब और-भी पॉच जनोके आदरका स्वाद मिल गया है, इसलिए एकके घट जानेसे उसका कुछ बनना-बिगड़ता नही।

चारु साफ समझ गई कि उसके हाथसे निकलकर अन्य पाँच-जनोके हाथ पडकर अमल बड़ी आफतमें फॅस गया है। उसे अब वह ठीक अपना समकक्ष नहीं समझता। आज चारुसे वह आगे बढ़ गया है। आज वह है लेखक और चारु है पाठक ! इसका प्रतिकार करना ही होगा उसे।

सोचते-सोचते चारुका मन मानो अस्फुट स्वरमे बोल उठा, 'ओह, सरल अमल, मायाविनी मन्दा, और बेचारे भइया !'

६

उस दिन आषाढ़के नवीन मेघोसे आकाश छा गया था। कमरेमें अँधेरा घना हो आनेसे चारु अपनी खुली खिड़कीके पास बैठी सिर झुकाये कुछ लिख रही थी।

अमल पीछेसे कब दबे-पाँव आकर खड़ा हो गया, उसे नही मालूम। बदलीके स्निग्ध प्रकाशमें चारु लिखती गई, और अमल पढता गया। उसके सामने अमलकी ही लिखी-हुई दो-एक छपी-हुई रचनाए खुली पड़ी थीं। चारुके लिए वे ही उसकी रचनाका एकमात्र आदर्श थी।

"तुम तो कहा करती थीं कि तुम्हें लिखना आता ही नहीं !"—सहसा अमलका स्वर सुनकर चारु एकाएक चौंक पड़ी ; और चटसे उसने अपनी कापी दुबका ली। बोली—"यह तुम बहुत ज्यादती करते हो। अन्याय है यह तुम्हारा !"

अमलने कहा—"इसमें अन्याय क्या हुआ ?"

चारुने कहा—"छिपे-छिपे देख क्यों रहे थे ?"

अमलने जवाब दिया—"प्रकट रूपसे देख नहीं पाता इसलिए।"

चारु अपनी रचना फाड़ फेंकना चाहती थी, पर अमलने चटसे उसके हाथसे कापी छीन ली। चारुने कहा—"अगर तुम पढ़ोगे, तो तुमसे मेरी जनम-भरके लिए अड्डी हो जायगी !"

अमलने कहा—"अगर पढ़नेकी मनाही करोगी, तो तुमसे मेरी जिन्दगी भरके लिए अड्डी हो जायगी !"

चारुने कहा—"मेरे कंठकी कसम है, लालाजी, पढ़ना मत !"

अन्तमें चारुको ही हार माननी पड़ी। कारण, अमलको अपनी रचना दिखानेके लिए भीतरसे उसका जी फड़फड़ा रहा था। किन्तु दिखाते वक्त उसे इतनी शरम आयेगी, यह उसने नहीं सोचा था। अमलने जब बहुत अनुनय करनेके बाद पढ़ना शुरू किया, तो चारुके हाथ-पैर बरफ-से ठंढे पड़ गये। बोली—"मैं जरा पान ले जाऊं।" और चटसे बगलके कमरेमें पान लगाने चली गई।

अमल पढ़ना खतम करके चारुसे जाकर बोला—"भाभी, लिखा तो तुमने बहुत अच्छा है।"

चारु पानपर कत्था लगाना भूल गई ; बोली—"चलो रहने दो, मजाक उड़ानेकी जरूरत नहीं। दो, मेरी कापी दो।"

अमल बोला—"कापी अभी नहीं दूंगा, नकल करके इसे छपने भेजूँगा।"

चारुने कहा—"हाँ, छपने तो जरूर भेजोगे ! सो नहीं होनेका।"

चारु अपनी कापी पानेके लिए अमलके पीछे पड़ गई। पर अमलने भी किसी तरह पीछा नहीं छोड़ा। उसने जब बार-बार कसम खाकर कहा

कि 'अखबारमें भेजने लायक है' तब चारुने मानो बिलकुल निराश होकर कहा—"तुमसे मैं जीत थोड़े ही सकती हूँ ! जिस बातकी मनमें ठान लोगे, उसे तुम बगैर पूरा किये नहीं छोड़ोगे। बड़े जिद्दी हो तुम, जाओ !"

अमलने कहा—"भाई साहबको एक बार दिखाना होगा।"

सुनते ही चारु पान लगाना छोड़कर जल्दीसे उठ खड़ी हुई ; और कापी छीननेकी कोशिश करती हुई बोली—"नहीं, उन्हें नहीं सुना सकते ! उनसे अगर मेरी लिखनेकी बात कही, तो मैं फिर एक अक्षर भी कभी न लिखूंगी !"

अमलने कहा—"भाभी, तुम बड़ी-भारी गलती कर रही हो। भइया मुंहसे चाहे जो भी कहें, तुम्हारी रचना देखकर बहुत खुश होंगे।"

चारु बोली—"होने दो, मुझे खुशीकी जरूरत नहीं।"

चारु प्रतिज्ञा किये बैठी थी कि वह लिखेगी और अमलको आश्चर्यचकित कर देगी। मन्दा और उसमें कितना अन्तर है, इस बातको प्रमाणित किये बगैर वह न मानेगी। पिछले कई दिनोंमें ; उसने बहुत लिखा है और फाड़-फाड़कर फेंक दिया है। उसने जो भी लिखना शुरू किया, वह बिलकुल अमल सरीखा हो गया। मिलाकर देखा तो कहीं-कहीं बिलकुल अमलकी रचनाकी नकल-सी ही मालूम हुई ; और वही अंश अच्छे हुए, बाकीके मामूली। देखकर जरूर अमल मन-ही-मन हँसेगा, इस बातकी कल्पना करके चारुने उन सबको टुकड़े-टुकड़े करके तालाबमें फेंक दिया कि कहीं एक-आध टुकड़ा अमलके हाथ न लग जाय।

पहले उसने लिखा, 'सावनके बादल' ; और सोचा कि उसने भावोंके अश्रुजलसे अभिषिक्त एक बहुत अच्छी रचना लिख डाली। पीछे सहसा होश आया कि वह तो अमलके 'आषाढ़के चाँद'का दूसरा पहलू है ! अमलने लिखा था, "भाई चाँद, तुम बादलोंमें चोरकी तरह छुपे-छुपे क्यों फिरते हो ?" और चारुने लिखा है, "सखी कादम्बिनी, सहसा तुम कहाँसे आकर नील अंचलके नीचे चाँदकी चोरी करके भागी जा रही हो ?" इत्यादि।

जब किसी भी तरह वह अमलकी शैलीको न छोड़ सकी, तो उसने लिखनेका विषय बदल दिया। चाँद, मेघ, शेफालिका इन सबको छोड़कर

उसने 'देवीके मन्दिरमें' लिखा। उसके पीहरमें वृक्षोंकी छायासे अन्धकारमय तालाबके किनारे कालीका मन्दिर था। उस मन्दिरके विषयमें बचपनकी कल्पना, भय और उत्सुकता लिये-हुए उसको कुछ विचित्र स्मृतियाँ थीं, उसकी जाग्रत देवीके महात्म्यके सम्बन्धमें गाँवमें चिर-प्रचलित प्राचीन किम्बदन्तियाँ थीं, उन्हींको लेकर उसने यह गद्य लिखा था। उसका प्रारम्भिक भाग अमलकी शैलीपर काव्याडम्बर-पूर्ण था, पर कुछ आगे चलकर रचना अपने-आप ही सरल होकर गाँवकी भाषा-भंगिमा और आभाससे भर गई।

और, वही रचना अमलने छीन ली! उसे मालूम हुआ, शुरूका भाग बहुत अच्छा हुआ है, पर अन्त तक कवित्वकी रक्षा नहीं हुई। कुछ भी हो, प्रथम रचनाके लिहाजसे लेखिकाका उद्यम प्रशंसनीय है।

चारुने कहा—"लालाजी, हम दोनों मिलकर एक मासिकपत्र निकालें तो कैसा हो?"

अमलने कहा—"बहुतसे रौप्यचन्द्रके बिना पत्र चलेगा कैसे?"

चारु—"हमारे इस पत्रमें कोई खर्च नहीं। छपेगा थोड़े ही, हाथका लिखा होगा; उसमें हमारे-तुम्हारे सिवा और किसीका लेख नहीं निकलेगा; और न किसीको पढ़ने ही दिया जायगा। सिर्फ दो प्रति निकलेंगी; एक तुम्हारे लिए और एक मेरे लिए।"

कुछ दिन पहले यह बात होती, तो अमल मारे खुशीके उछल पड़ता, पर अब गोपनताका उत्साह उसका जाता रहा। अब बिना दस-बीसको सामने रखे लिखनेमें उसे आनन्द ही नहीं आता। फिर भी पुराना ठाठ कायम रखनेके लिए उसने उत्साह दिखाया। बोला—"बड़ा मजा रहेगा!"

चारुने कहा—"मगर तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी। अपने पत्रके सिवा और कहीं भी तुम लेख प्रकाशित नहीं करा सकते।"

अमल बोला—"तब तो सम्पादक लोग मुझे मार ही डालेंगे।"

चारुने कहा—"और मेरे हाथमें मारनेका कोई अस्त्र ही नहीं, क्यों?"

बात तय हो गई। दोनों सम्पादक, दोनों लेखक और दोनों पाठकोंकी कमेटी बैठी। अमलने कहा—"पत्रका नाम रखा जाय 'चारुकला'!"

चारुने कहा—"नही, उसका नाम होगा 'अमला'।"

इस नई व्यवस्थासे चारु बीचके कुछ दिनोंका दुःख भूल गई। इनके मासिक-पत्रमें मन्दाके घुसनेका कोई रास्ता ही नहीं ; और बाहरवालोंके लिए भी रास्ता बन्द है।

७

एक दिन भूपतिने आकर कहा—"चारु, तुम लेखिका हो जाओगी, ऐसी तो कभी कोई बात नहीं हुई थी!"

चारु चौंककर लाल हो गई, बोली—"मैं, और लेखिका! किसने कहा तुमसे? हरगिज नहीं।"

भूपतिने कहा—"माल समेत गिरफ्तार हो गई हो, प्रेयसी! सबूत हाथों-हाथ लो!" कहते-हुए भूपतिने 'सरोरुह' का वह अङ्क निकालकर दिखाया। चारुने देखा, जिन लेखोंको वह अपनी गुप्त सम्पत्ति समझकर अपने हस्त-लिखित मासिक-पत्रमें संचित कर रही थी, वे ही लेख मय लेखक-लेखिकाके नामके 'सरोरुह' में छाप दिये गये हैं!

उसे मालूम हुआ, मानो किसीने उसके पिंजड़ेकी बड़े जतनसे पाली-हुई चिड़ियोंको, दरवाजा खोलकर, उड़ा दिया है। भूपतिके सामने पकड़े जानेकी लज्जाको भूलकर वह विश्वासघाती अमलपर मन-ही-मन बहुत नाराज होने लगी।

'और यह देखो!" – कहते हुए भूपतिने चारुके सामने 'विश्वबन्धु' पत्र खोलकर रख दिया ; उसमें 'आजकलकी लेखन-शैली' शीर्षक किसीका एक लेख निकला था।

चारुने उसे हाथसे अलग हटाते हुए कहा—"इसका मैं क्या करूंगी!" तब अमलपर उसे इतना गुस्सा आ रहा था कि मारे अभिमानके वह दूसरी तरफ मन ही नहीं दे सकती थी।

भूपतिने जोर देकर कहा—"एक बार पढ़ तो देखो!"

चारुको उसपर आँखें फेरनी ही पड़ीं। आधुनिक किसी-कीसी श्रेणीके

लेखकोंके भावाडम्बरसे भरे-हुए गद्यकी निन्दा करते हुए लेखकने बड़ा कड़ा लेख लिखा है। उसमें समालोचकने मन्मथ दत्तकी लेखन-शैलीका बहुत जोरका मजाक उड़ाया है; और उसके साथ तुलना करते-हुए नवीन लेखिका श्रीमती चारुलताकी भाषाकी अकृत्रिम सरलता, सहज सरसता और चित्र-रचनाकी निपुणताकी बहुत प्रशंसा की है। लिखा है, "ऐसी रचना-शैलीका अनुकरण करके सफलता प्राप्त कर सकें, तभी अमल-कम्पनीका उद्धार हो सकता है; अन्यथा वह बिलकुल फेल हो जायगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।"

चारु अपनी रचनाओंकी इस प्रशंसासे जब-जब प्रसन्न होनेको तैयार हुई, तब-तब वह सहसा व्यथित होने लगी। प्रसन्नता उसके मनमें मानो किसी कदर आना ही नहीं चाहती। प्रशंसाका लोभनीय सुधा-पात्र ज्यों ही उसके ओठों तक पहुँचता, त्यों ही चटसे वह उसे धकेलकर अलग कर देने लगी।

चारुने समझा कि उसकी रचनाएँ पत्रोंमें छपाकर अमलने सहसा उसे विस्मित कर देनेका संकल्प किया होगा। अन्तमें, छप जानेके बाद उसने तय किया होगा कि किसी पत्रमें प्रशंसापूर्ण आलोचना निकले तो दोनों एकसाथ दिखाकर चारुका रोष ठंडा और उत्साह गरम कर देगा। मगर जब प्रशंसा निकली तो अमल उसे आग्रहके साथ दिखाने क्यों नहीं आया? इस समालोचनासे अमलको चोट पहुँची होगी; और उसे वह दिखाना नहीं चाहता, इसीलिए इन पत्रोंको वह छिपा गया है। चारुने अपने आरामके लिए अत्यन्त एकान्तमें जो एक साहित्य-नीड़ बनाया था, सहसा प्रशंसाकी शिला-वृष्टिका एक बड़ा-सा ओला पड़ते ही उसके स्खलित होकर नीचे गिर पड़नेकी नौबत आ पहुँची। चारुको यह कतई अच्छा नहीं लगा।

भूपतिके चले जानेपर चारु अपने सोनेके कमरेमें जाकर चुपचाप पलंगपर जा बैठी। सामने उसके 'सरोरुह' और 'विश्वबन्धु' खुले पड़े थे।

अमलने कापी हाथमें लिये-हुए, सहसा चारुको चौंका देनेके खयालसे, दबे-पाँव पीछेसे प्रवेश किया। चारुके पास जाकर देखा तो, वह अपने सामने 'विश्वबन्धु' की समालोचना खोले निस्तब्ध बैठी है।

अमल जैसे आया था, वैसे ही दबे-पाँव बाहर निकल गया। वह सोचने लगा, 'मेरी निन्दा करके चारुकी शैलीकी प्रशंसा होनेसे चारुको ऐसी खुशी कि बाहरका कुछ होश-हवास तक नहीं !' और क्षण-भरमें उसका सम्पूर्ण चित्त मानो कड़ुआ हो गया। चारु एक मूर्खकी समालोचना पढ़के अपनेको गुरुसे भी बढ़कर समझने लगी, यह सोचकर अमल चारुपर बहुत ही नाराज हो उठा। मन ही मन उसने कहा, 'चारुको चाहिए था कि उस अखबारके टुकड़े-टुकड़े कर डालती और आगमें जलाकर भस्म कर देती।'

चारुपर गुस्सा होकर अमल तुरत मन्दाके कमरेके सामने पहुचा, पुकारा—"मन्दा-भाभी !"

मन्दा बोली—"आओ, लालाजी, आज तो बिना माँगे ही दर्शन पा गई ! आज मेरी तकदीर बुलन्द मालूम होती है।"

अमलने कहा—"अपनी दो-एक नई रचनाएं लाया हूं, सुनोगी क्या ?"

मन्दाने कहा—"कितने दिनोंसे 'सुनाऊंगा, सुनाऊंगा' कहके आशा देते आ रहे हो, पर सुनाते कहाँ हो ? जरूरत नहीं, भइया, फिर कहीं कोई गुस्सा हो गई तो तुम्हारी ही आफत है ; मेरा क्या है !"

अमलने जरा-कुछ तीखे स्वरमें कहा—"गुस्सा कौन होगी ? क्यों कोई गुस्सा होगी ? अच्छा, जो होगा सो देखा जायगा, तुम अभी सुनो तो सही !"

मन्दा अत्यन्त आग्रहके साथ जल्दीसे संयत होकर बैठ गई। और अमलने सुरीली आवाजमें समारोहके साथ पढ़ना शुरू किया।

अमलकी रचना मन्दाके लिए बिलकुल ही विदेशी थी, उसमें उसे कहीं कोई किनारा नहीं सुझाई देता ; और इसीलिए वह अपने सारे चेहरेपर आनन्दकी हँसी लाकर अतिरिक्त व्यग्रताके साथ सुनने लगी। उत्साहसे अमलका कण्ठ उत्तरोत्तर ऊंचा होने लगा।

अमल पढ़ने लगा—"अभिमन्युने जैसे गर्भावस्थामें सिर्फ व्यूहमें प्रवेश करना ही सीखा था, निकलना नहीं सीखा, उसी तरह नदीके स्रोतने गिरि-कन्दराके पाषाण-जठरमें रहकर केवल सामने ही चलना सीखा है, पीछे लौटना

नहीं सीखा। हाय रे नदीका स्रोत, हाय रे यौवन, हाय रे काल, हाय रे संसार, तुम सब-के-सब सिर्फ सामने ही चल सकते हो, – जिस मार्गमें स्मृतिके स्वर्ण-मण्डित कंकड़ बखेर आते हो, उस मार्गपर फिर कभी कदम ही नहीं रखते ! आदमीका मन ही सिर्फ पीछेकी ओर देखा करता है, अनन्त जगत् उस तरफ मुड़कर देखता भी नहीं !"—

ठीक इसी समय मन्दाके दरवाजेके पास एक छाया दिखाई दी। और मन्दाने उसे देख लिया, पर ऐसे ढंगसे जैसे देखा ही न हो ! और वह अनिमेष-दृष्टिसे अमलके मुंहकी ओर देखती-हुई स्थिर मनोयोगके साथ उसका पढ़ना सुनने लगी।

छाया उसी वक्त वहाँसे हट गई।

चारु प्रतीक्षा कर रही थी कि अमलके आनेपर उसके सामने वह 'विश्वबन्धु' पत्रको यथोचित रूपसे लांछित करेगी ; और प्रतिज्ञा भंग करके अमलने जो उसकी रचना बाहरके मासिकपत्रमें प्रकाशित कराई है, इसके लिए उसे फटकारेगी।

किन्तु, अमलके आनेका समय निकल गया, फिर भी उसका पता नहीं। चारुने एक-और गद्य लिखकर तैयार कर लिया था। अमलको सुनानेकी इच्छा है ; किन्तु श्रोताकी अनुपस्थितिमें वह पड़ा ही है।

इसी समय कहींसे उसे अमलकी अवाज सुनाई दी। 'अच्छा ! मन्दाके कमरेमें !' – सोचते ही बाणसे बिंधी हुई-सी वह उठ खड़ी हुई। दबे-पाँव वह मन्दाके दरवाजेके पास जाकर खड़ी हो गई। अमल जो लेख मन्दाको सुना रहा था, उसे चारुने अभी तक सुना ही नहीं ! अमल पढ़ रहा था, 'आदमीका मन ही सिर्फ पीछेकी ओर देखा करता है, अनन्त जगत् उस तरफ मुड़कर देखता भी नहीं।'

चारु जैसे दबे-पाँव आई थी वैसे वह चुपके-से जा न सकी। आज एकके बाद एक-दो-तीन आघातोंने उसे बिलकुल धैर्यच्युत कर दिया। 'मन्दा एक अक्षर भी समझ नहीं रही और अमल बिलकुल निर्बोध मूढ़की तरह, उसे अपनी रचना सुनाकर तृप्त हो रहा है !' – यह बात जोरसे चिल्लाकर कह आनेकी

इच्छा हुई ; पर मुंहसे कुछ कह न सकनेके कारण, मारे क्रोधके, वह पैरोंकी आवाजसे उसे प्रकट कर आई। अपने शयन-गृहमें प्रवेश करके उसने जोरसे, आवाजके साथ, किवाड़ बन्द कर लिये।

अमलने क्षण-भरके लिए पढ़ना स्थगित कर दिया। मन्दाने हँसकर चारुकी तरफ इशारा किया। अमलने मन-ही-मन कहा, 'भाभीकी कैसी ज्यादती है! उन्होंने यही सोच रखा है कि मैं उन्हींका खरीदा-हुआ गुलाम हूं! उनके सिवा और किसीको भी अपनी रचना नहीं सुना सकता! यह तो बड़ा-भारी जुल्म है।' और फिर, पहलेसे और भी ऊंचे स्वरमें पढ़ने लगा।

पढ़ना खतम हो जानेपर अमल चारुके कमरेके सामनेसे निकल गया, एक बार सिर्फ देख-भर लिया कि चारुका दरवाजा बन्द है।

चारुने पैरोंकी आहटसे समझ लिया कि अमल उसके कमरेके सामनेसे चला जा रहा है। एक बार रुका तक नहीं! क्रोध और क्षोभसे उसे रुआई भी न आई। उसने अपने नये लेखोंकी कापी निकालकर, उसका प्रत्येक पन्ना फाड़-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके ढेर लगा दिया। हाय, किस कुमुहूर्तमें यह लिखना-पढ़ना शुरू हुआ था!

८

शामके वक्त, बरामदेके टबसे जुहीकी खुशबू आ रही थी। बिखरे-हुए बादलोंके भीतरसे स्निग्ध आकाशमें तारे दिखाई दे रहे थे। आज चारुने बाल नहीं सँवारे, कपड़े भी नहीं बदले। खिड़कीके पास अँधेरेमें अकेली बैठी है, मृदु-मन्द हवा उसके खुले बालोंको उड़ा रही है: और उसकी आँखोंसे जो टपटप आँसू गिर रहे हैं, उसका उसे होश ही नहीं!

इतनेमें भूपतिने कमरेमें प्रवेश किया। उनका चेहरा बहुत ही उदास और हृदय भाराक्रान्त था। भूपतिके आनेका यह समय नहीं था। अखबारके लिए कुछ लिखकर और प्रूफ देखकर घर आनेमें उन्हें अकसर देर हो जाती है। आज शामके बाद ही वे मानो किसी सान्त्वनाकी आशासे चारुके पास चले आये। कुछ आश्चर्यके साथ उन्होंने चारुको पुकारा—"चारु!"

भूपतिकी आवाजसे चौंककर चारु चटसे उठ बैठी। उसने यह नहीं सोचा था कि इस समय भूपति आ सकते हैं। भूपतिने उसके बालोंमें उंगलियाँ फेरते-हुए स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा—"अँधरेमें तुम अकेली बैठी हो जो! मन्दा कहाँ गई?"

चारुने जैसी कि आशा कर रखी थी, आज दिन-भर वैसा कुछ हुआ ही नहीं। वह निश्चित जानती थी कि अमल आके माफी माँगेगा। उसके लिए तैयार होकर ही वह प्रतीक्षा कर रही थी। इतनेमें भूपतिके अप्रत्याशित कण्ठ-स्वरसे मानो वह अपनेको सम्हाल न सकी, और यकायक रो पड़ी।

भूपतिने घबराकर और व्यथित होकर पूछा—"क्या हुआ, चारु?"

'क्या हुआ है' – यह बताना मुश्किल है। और ऐसा हुआ भी क्या है जो कहा जाय! कोई खास बात तो हुई नहीं। अमलने अपनी नई रचना पहले उसे न सुनाकर मन्दाको सुनाई है, इस बातकी वह किससे क्या शिकायत करे! सुननेसे भूपति क्या हँसेंगे नहीं? इस छोटी-सी बातमें जबरदस्त शिकायतका विषय कहाँ छुपा-हुआ है, उसे ढूंढ़ निकालना चारुके लिए असाध्य है। बिना-कारण वह इतना दुःख पा रही है, यह बात पूरी तरहसे समझमें न आनेसे उसकी वेदना और भी बढ़ गई।

भूपतिने कहा—"बताओ न, तुम्हें क्या हो गया! मैंने क्या तुमपर किसी तरहका अन्याय किया है? तुम तो जानती ही हो, मैं काम-काजके झंझटमें किस कदर फँसा रहता हूँ! तुम्हारे मनको किसी तरहकी ठेस पहुंची हो, तो इतना निश्चित समझना कि मैंने जान-बूझकर हर्गिज नहीं पहुँचाई।"

भूपति चारुसे ऐसे विषयमें पूछ रहा है, जिसका उसके पास कोई जवाब नहीं; और इसलिए चारु भीतर-ही-भीतर और भी अधीर हो उठी। वह सोचने लगी कि भूपति इस समय उसे किसी तरह छुटकारा दे दें तो वह जी जाय।

भूपतिने दूसरी बार भी कुछ उत्तर न पाकर फिर स्नेह-सिक्त स्वरमें कहा—"मैं बराबर तुम्हारे पास आ नहीं पाता, चारु, इसके लिए मैं अपराधी हूं, और शरमिन्दा हूँ। मगर अब ऐसा न होगा। अब मैंने तय कर लिया

है कि दिन-रात अखबारके पीछे न पड़ा रहूंगा। मुझे तुम जितना चाहोगी उतना ही पाओगे, चारु !"

चारु अधीर होकर उठी, बोली—"इसलिए नहीं—"

भूपतिने कहा—"तो किस लिए ?" और वे पलंगपर बैठ गये।

चारु अपने विरक्तिके स्वरको छिपा न सकी, बोली —"अभी नहीं, रातको बताऊंगी।"

भूपति क्षण-भर स्तब्ध रहकर बोले—"अच्छा, जाने दो।" और धीरेसे उठकर बाहर चले गये। उन्हें खुद जो-कुछ कहना था, सो भी नहीं कह सके।

भूपति एक तरहका क्षोभ लेकर चले ही आये थे : और यह बात चारुसे छिपी न रही। उसके मनमें आई कि वह उन्हें वापस बुला ले, पर बुलाकर कहेगी क्या ? अनुताप उसके कलेजेमें छिद-सा गया, और कोई प्रतिकार उसे ढूंढे न मिला।

रात हुई। चारुने आज खूब जतनसे भूपतिकी थाली सजाई : और पंखा हाथमें लिये बैठी रही।

इतनेमें उसने सुना कि मन्दा ऊंचे स्वरसे पुकार रही है—"बिरजू, बिरजू !" और बिरजू नौकरके आ जानेपर पूछ रही है —"अमल बाबू खा चुके क्या ?"

बिरजूने जवाब दिया—"खा चुके।"

मन्दाने कहा—"खा चुके, और तू पान नहीं ले गया जो !" मन्दा बिरजूको खूब डाटने लगी।

ठीक इसी समय भूपति भोजन करने बैठे। चारु पंखा करने लगी।

चारुने आज प्रतिज्ञा की थी कि भूपतिके साथ वह प्रसन्नता और मिठासके साथ वह खूब बातें करेगी। बातचीतका विषय वह पहलेसे ही सोचकर तैयार हुई बैठी थी। पर मन्दाके कण्ठस्वरने उसका विस्तृत आयोजन तोड़-फोड़ कर नष्ट दिया। नतीजा यह हुआ कि भोजन कराते समय भूपतिसे वह एक भी बात न कर सकी। भूपति भी अत्यन्त विमर्ष और अन्यमनस्क थे।

उन्होंने अच्छी तरह खाया भी नहीं। चारुने सिर्फ एक बार पूछा—"आज कुछ खाया तो नहीं तुमने ?"

भूपतिने प्रतिवाद करते-हुए कहा—"क्यों, कम तो नहीं खाया !"

सोनेके कमरेमें पहुचनेपर भूपतिने कहा—"हाँ, रातको तुम क्या कहना चाहती थीं, कहो !"

चारुने कहा—"देखो, कुछ दिनोंसे मन्दाका व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लग रहा। उसे यहाँ रखनेकी अब मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।"

भूपतिने कहा—"क्यों, क्या कर डाला ?"

चारुने कहा—"अमलके साथ उसका ऐसा व्यवहार हो रहा है कि देखनेवालेको शरम आ जाय !"

भूपतिने हँसकर कहा—"हः हः हः ! तुम पागल तो नहीं हो गई ! अमल अभी लड़का ही है, उस दिनका—"

चारु बोली—"तुम तो घरकी खबर कुछ रखते नहीं, सिर्फ बाहरकी खबरें ही छापा करते हो ! कुछ भी हो, बेचारे भइयाके लिए मुझे सोच है। उन्होंने कब खाया, कब नहीं खाया, मन्दा इस बातकी खोज ही नहीं रखती ; और अमलके लिए ऐसी चौकन्नी कि पानमें जरा चूना भी कम हो जाय तो नौकर-चाकरोंको डाट-फटकारकर अनर्थ कर डालती है !"

भूपतिने कहा—"असलमें, तुम औरतोंकी जात ही बड़ी शक्की होती है। कुछ नहीं, फालतू बात है।"

चारुने कहा—"अच्छी बात है, हम औरतें सब शक्की ही सही ! पर ऐसा बेहयापन मैं अपने घरमें न होने दूंगी, कहे देती हूं !"

चारुकी इन-सब बेबुनियाद आशंकाओंसे भूपति मन-ही-मन हँसा और खुश भी हुआ। घर जिससे पवित्र रहे और दाम्पत्य-धर्मको आनुमानिक या काल्पनिक कलंक भी रंचमात्र स्पर्श न कर जाय, इसके लिए सती-साध्वी स्त्रियोंका अतिरिक्त सावधान रहना और सन्दिग्ध दृष्टि रखना, इसमें भी एक माधुर्य और महत्त्व है।

भूपतिने श्रद्धा और स्नेहसे चारुका ललाट चूमकर कहा—"प्रेयसी, इस

बातको लेकर शोर मचानेकी कोई जरूरत नही, अब उमापति मैमनसिंहमें प्रैक्टिस करने जा रहा है, मन्दाको भी साथ लेता जायगा।''

अन्तमें अपनी दुश्चिन्ता और इन-सब अप्रिय आलोचनाओंको दबा देनेके लिए भूपतिने टेबिलसे एक कापी उठाकर कहा –''तुम अपनी कोई रचना सुनाओ न, चारु !''

चारुने कापी छीनकर कहा—''यह तुम्हें अच्छी नही लगेगी ; तुम मजाक उड़ाओगे !''

भूपति इस बातसे कुछ व्यथित हुए ; पर चारुसे छिपाकर हँसते हुए बोले—''अच्छा, मै मजाक नही उड़ाऊगा ; ऐसा मन लगाकर सुनूंगा कि तुम्हें भ्रम हो जायगा कि शायद मै सो गया हूं !''

किन्तु फिर भी भूपति उसपर कुछ प्रभाव न डाल सके, और देखते-देखते सब कापियाँ अनेक आवरणोमें विलीन हो गई।

६

भूपति अपने मनकी सब बातें चारुसे न कह सके। उमापति भूपतिके अखबारका मैनेजर था। चन्दा वसूल करना, प्रेस और बाजारका लेन-देन, नौकरोंको तनखा देना – यह सब काम उसीके जिम्मे था।

इस बीचमें, अचानक एक दिन कागजवालेकी तरफसे वकीलकी चिट्ठी पाकर भूपति दंग रह गये। भूपतिपर उसके सत्ताईस हजार रुपये निकलते हैं !

भूपतिने उमापतिको बुलाकर कहा—''यह क्या बात है ! ये रुपये तो मैं तुम्हें दे चुका हूं ! कागजवालेका देना दो-चार हजारसे ज्यादा नही होना चाहिए।''

उमापतिनें कहा—''जरूर उसने कोई गलती की है।''

मगर बात दबी नहीं रही। कुछ दिनोंसे उमापति इसी तरह धोखा देता आ रहा है। सिर्फ कागजके बारेमें ही नही, भूपतिके नामसे उसने

बाजारमें बहुत कर्जा कर लिया है। गाँवमें जो वह अपने लिए पक्की हवेली बनवा रहा है उसका अधिकांश सामान उसने भूपतिके नाम लिखाकर लिया है; और उसमें बहुत-सा रुपया कागज-खातेका लगा दिया है।

आखिर जब पकड़ गया, तो रूखे स्वरसे बोला—"मैं तो भागा नहीं जा रहा! काम करके मैं धीरे-धीरे सब चुका दूंगा। तुम्हारी अगर एक कौड़ी भी बाकी रह जाय तो मेरा नाम बदल देना।"

उसके नाम-परिवर्तनसे भूपतिको कोई तसल्ली नहीं हो सकती। असलमें, मात्र रुपयेके नुकसानसे उन्हें उतना कष्ट नहीं हुआ; पर अकस्मात् इस विश्वासघातसे उनके पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक गई।

इसीलिए उस दिन वे असमयमें घरके भीतर गये थे। संसारमें कमसे कम एक विश्वास करने-लायक जगह है, क्षण-भरके लिए इस बातका अनुभव कर आनेके लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा था। परन्तु चारु तब अपने ही दुःखसे, संध्या-प्रदीप बगैर जलाये ही, खिड़कीके पास अँधेरेमें बैठी थी।

उमापति दूसरे ही दिन मैमनसिंह जानेकी तैयारी करने लगा। बाजारवालोंको मालूम होनेके पहले ही वह खिसक जाना चाहता है। भूपति मारे घृणाके उमापतिसे बोले तक नहीं; और भूपतिकी इस चुप्पीको उमापतिने अपना सौभाग्य समझा!

अमलने आकर मन्दासे पूछा—"मन्दा-भाभी, आखिर क्या बात हुई? चीज-वस्त बाँधनेकी यह धूम कैसी?"

मन्दाने कहा—"पराया घर ठहरा, जाना तो पड़ेगा ही! हमेशा क्या यहीं बनी ही रहूंगी!"

अमल बोला—"आखिर है कहाँकी तैयारी?"

मन्दा बोली—"देशकी।"

अमलने कहा—"क्यों, यहाँ क्या तकलीफ हो गई?"

मन्दाने कहा—"तकलीफ मुझे क्या है बताओ! तुम सबोंके साथ थी, आरामसे ही थी। लेकिन औरोंको जो तकलीफ होने लगी!"—इतना कहकर उसने चारुके कमरेकी तरफ इशारा किया।

अमल गम्भीर होकर चुप हो रहा ।

मन्दाने कहा—"छिः छिः, कैसी शरमकी बात है ! भूपति बाबू अपने मनमें क्या सोचते होंगे !"

अमलने इस बातको लेकर आगे कुछ चर्चा नहीं की । अपने मनमें सिर्फ इतना समझ लिया कि चारुने उन दोनोंके बारेमें भइयासे ऐसी कोई बात कही है जो कहनेकी नहीं है ।

अमल घरसे निकलकर रास्तेमें टहलने लगा । उसकी ऐसी तबीयत हो गई कि वह इस घरमें अब वापस न आवे । भाइयाने अगर भाभीकी बातपर विश्वास करके उसे अपराधी समझ लिया हो, तो, मन्दाको जिस रास्ते जाना पड़ रहा है उसे भी वही रास्ता पकड़ना चाहिए । मन्दाको विदा करना एक हिसाबसे अमलके लिए निर्वासनका आदेश है ; सिर्फ वह मुंहसे कहा नहीं गया, बस । इसके बाद उसका कर्तव्य बिलकुल स्पष्ट है, अब एक क्षण भी यहाँ नहीं रहा जा सकता । मगर भइया उसके विषयमें मन-ही-मन किसी तरहकी अनुचित धारणा बनाये रखें, यह भी ठीक नहीं । इतने दिनोंसे वे उसे अक्षुण्ण विश्वाससे घरमें स्थान देकर उसका पालन-पोषण करते आये हैं, उस विश्वासपर अमलने किसी भी अंशमें चोट नहीं पहुँचाई, यह बात भाई साहबको बगैर समझाये वह कैसे जा सकता है !

भूपति उस समय रिश्तेदारोंकी कृतघ्नता, पावनेदारोंके तकाजे, जाल हिसाब और रीती तहबीलको लेकर माथेपर हाथ धरे चिन्तामें डूबे हुए थे इस शुष्क मानसिक दुःखमें उनका कोई साथी न था । वे गम्भीर मनोवेदना और कर्जके साथ अकेले खड़े जूझनेके लिए तैयार हो रहे थे ।

इतनेमें अमलने आँधीकी तरह उनके कमरेमें प्रवेश किया । भूपतिने अपनी अथाह चिन्तामेंसे सहसा चौंककर उसकी तरफ देखा ; और बोले—"क्या खबर है अमल !" अकस्मात उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे अमल और-कोई दुःसंवाद लेकर आया हो !

अमलने कहा—"भाई साहब, मुझपर सन्देह करनेका क्या कोई कारण हुआ है ?"

भूपतिने आश्चर्यके साथ कहा—"तुम्हारे ऊपर सन्देह !" और मन ही मन सोचने लगे, जैसी दुनिया देख रहा हूँ, किसी दिन अमलपर भी सन्देह करना पड़े तो कोई ताज्जुब नहीं ।

अमलने कहा—"भाभीने क्या मेरे चरित्रके सम्बन्धमें तुम्हारे पास कोई शिकायत की है ?"

भूपतिने सोचा, 'यह बात है ! खैर, जीमें जी तो आया । स्नेहका अभिनय है !' उन्होंने सोचा था कि सर्वनाशपर शायद और-कोई सर्वनाश हो गया ! मगर भयङ्कर संकटके समयमें भी इन-सब तुच्छ विषयोंको सुनना ही पड़ता है । दुनिया एक तरफ पुलको झकझोरती भी रहेगी और दूसरी तरफ उस पुलको अपनी शाक-सब्जीकी डालियाँ पार करनेके लिए तागीद करनेसे भी बाज न आयेगी ! दुनियाका दस्तूर ही यही है ।

और कोई वक्त होता, तो भूपति अमलका मजाक उड़ाते ; पर आज उनमें वह प्रसन्नता न थी । उन्होंने कहा—"पागल तो नहीं हो गये !"

अमलने फिर पूछा—"भाभीने कुछ कहा नहीं है ?"

भूपतिने कहा—"तुमसे वे बहुत प्यार करती हैं, इसलिए कुछ कहा भी हो तो उसमें गुस्सा होनेकी कोई बात नहीं ।"

अमलने कहा—"काम-धन्धेकी कोशिशके लिए मुझे और-कहीं जाना चाहिए ।"

भूपतिने डाटते हुए कहा—"अमल, तुम ऐसा लड़कपन कर रहे हो जिसकी हद नहीं ! अभी मन लगाकर पढ़ो-लिखो । काम-धन्धेकी बात पीछे सोचना ।"

अमल उदास चेहरा लिये वहाँसे चला आया । और भूपति अपने अखबारके ग्राहक-रजिस्टरमें दर्ज तीन सालके चन्देके साथ खाता-बहीका हिसाब मिलाने बैठ गये ।

१०

बहुत सोच-विचारके बाद अमलने यह तय किया कि भाभीके साथ भाई साहबका मुकाबला करा देना होगा ; बातको इस तरह छोड़ देना ठीक नही। और साथ ही भाभीको जो-जो कडी-कड़ी बातें सुनानी हैं उन्हें भी मन-ही-मन याद करने लगा।

उधर मन्दाके चले जानेपर चारुने संकल्प किया कि अमलको वह अपने पास बुलाकर उसका रोष शान्त कर देगी। किन्तु किसी रचना सुननेके बहाने ही उसे बुलाना होगा। अमलकी ही एक रचनाके अनुकरणपर चारुने 'अमावस्याका प्रकाश' शीर्षक एक गद्य तैयार किया है। इतना वह समझ गई है कि अमलको उसकी स्वतन्त्र शैलीकी रचना पसन्द नही आती।

पूर्णिमा जो अपना सम्पूर्ण प्रकाश एकसाथ प्रकट कर देती है, इसके लिए चारुने अपनी नई रचनामें उसे काफी डाट-फटकारकर लज्जित किया है। उसने लिखा है—"अमावस्याके अतलस्पर्श अन्धकारमें षोडश-कलापूर्ण चन्द्रमा का सम्पूर्ण प्रकाश स्तर-स्तरमें आबद्ध पडा है, उसकी एक किरण भी खोई नहीं है, इसीसे पूर्णिमाकी उज्ज्वलतासे अमानस्याकी कालिमा इतनी परिपूर्ण है।" इत्यादि। अमल अपनी सभी रचनाए सबके सामने प्रकट कर देता है और चारु ऐसा नहीं करती, – पूर्णिमा और अमावस्याकी तुलनामें क्या इस बातका आभास नहीं है?

इधर इस परिवारके तीसरे व्यक्ति भूपति किसी आसन्न ऋणकी तागीदसे छुटकारा पानेके लिए अपने परम मित्र मोतीलालके पास रुपये माँगने गये थे। मोतीलालके संकटके समयमें भूपतिने उन्हें कई हजार रुपये उधार दिये थे ; और आज वे अपने इस घोर संकटमें उनसे अपने वे ही रुपये पावस लेने गये थे। मोतीलाल नहा-धोकर अपने उघड़े बदनपर पंखेकी हवा लगा रहे थे ; और सामने लकड़ीके बकसपर कागज रखकर उसपर छोटे-छोटे अक्षरोंमें हजार बार दुर्गाका नाम लिख रहे थे। भूपतिको देखकर अत्यन्त सहृदयताके साथ बोले—"आओ आओ, आजकल तो तुम्हारे दर्शन ही नहीं मिलते!"

मोतीलाल मित्रके मुंहसे रुपयेकी बात सुनकर जमीन-आसमानकी चिन्ता करते हुए बोले—"किन रुपयोंकी बात कह रहे हो तुम ! इधर तुमसे कुछ लिया है क्या ?"

भूपतिके, सन् और तारीखके साथ, पुरानी सब बातें याद दिलानेपर मोतीलालने ठहाका मारकर हँसते-हुए कहा—"अच्छा, उन रुपयोंकी कह रहे हो ! अरे, उसे तो बहुत दिन हो गये तमादी हुए !"

भूपतिकी दृष्टिमें मित्रका चेहरा मानो चारों तरफसे बदल-सा गया। दुनियाके जिस हिस्सेसे नकाब खुलकर गिर गया, उस हिस्सेको देखकर भूपतिके रोएँ खड़े हो गये। सहसा बाढ़ आ-जानेपर डरा-हुआ आदमी जिधर सबसे ज्यादा ऊँचा देखता है उसी तरफ भागने लगता है, ठीक उसी तरह भूपति भी इस निष्ठुर बहिःसंसारसे बड़े जोरसे अपने अन्तःपुरकी तरफ भागे। मन-ही-मन कहने लगे, 'दुनियामें और चाहे जो भी हो, कम-से-कम चारु तो मुझे धोखा नहीं देगी।'

चारु उस समय पलंगपर बैठी, गोदमें तकिया और तकियेपर कापी रखकर, झुकी-हुई कुछ लिख रही थी। भूपति जब बिलकुल ही उसके पास जा खड़े हुए, तब उसे होश आया ; और सहम गई। और चटसे वह अपनी पॉलथीके नीचे कापी दबाकर सम्हलके बैठ गई।

हृदयमें जब कोई व्यथा रहती है तब आदमीको जरा-सी बातसे बड़ी-भारी चोट लगती है। चारुको इस तरह अनावश्यक सहमते और जल्दीसे अपनी कापी छिपाते देख भूपतिके मनको गहरी चोट पहुँची।

भूपति धीरेसे चारुके पास बैठ गये। और, चारु अपने रचना-स्रोतमें अप्रत्याशित विघ्न आ जानेसे, और भूपतिके आगे सहसा कापी छिपानेकी व्यस्ततासे, ऐसी हो गई कि फिर उसके मुँहसे कोई बात ही नहीं निकली।

भूपतिको उस दिन अपनी तरफसे कुछ कहना या कहलवाना नहीं था। वह रीते-हाथ चारुके पास प्रार्थी होकर ही आये थे। चारुकी तरफसे आशंकाधर्मी प्रेमका कोई प्रश्न या जरा-सी कोई प्रेमकी बात मिल जानेसे ही उनके घावपर मरहम लग जाता और दाह मिट जाता। किन्तु 'लछमी

रहते लक्ष्मी गई' ! क्षण-भरकी आवश्यकता मिटानेके लिए चारुको मानो प्रेम-भण्डारकी चाभी ही कहीं ढूंढ़े न मिली । और दोनोंके कठोर मौनसे घरकी नीरवता बहुत ही घनी हो उठी ।

कुछ देर बिलकुल चुप रहकर भूपति एक गहरी सांस लेकर पलंग छोड़के उठ खड़े हुए ; और धीरे-धीरे बाहर चले गये ।

इसी समय अमल बहुत-सी कड़ी-कड़ी बातोंका गट्ठर लिये-हुए जल्दी-जल्दी चारुके कमरेकी तरफ आ रहा था, रास्तेमें उसने भूपतिका जो बिलकुल सूखा सफेद-फक चेहरा देखा तो वह उद्विग्न होकर खड़ा हो गया । बोला—"भाई साहब, आज कुछ तबीयत खराब है क्या तुम्हारी ?"

सहसा अमलका स्निग्ध स्वर सुनते ही भूपतिका सम्पूर्ण हृदय अपने अश्रु-भारसे सहसा मानो उफन-सा उठा । कुछ देर तक उनके मुंहसे बात ही नहीं निकली । बड़ी मुश्किलसे अपनेको सम्हालकर उन्होंने आर्द्र कण्ठसे कहा—"कुछ नहीं हुआ, अमल ! –इधर तुम्हारी कोई रचना निकल रही है क्या ?"

अमलने जो कड़ी-कड़ी बातें इकट्ठी कर रखी थीं, क्षणमें वे न-जाने कहाँ गायब हो गईं ! जल्दीसे भाभीके कमरेमें जाकर वह पूछने लगा—"भाभी, भइयाको क्या हुआ है, बताओ तो ?"

चारुने कहा—"ऐसी तो कोई बात नहीं हुई । किसी दूसरे अखबारने शायद उनके अखबारको गालियाँ दी होंगी ।"

अमल सिर हिलाने लगा ।

बिना बुलाये ही अमल आ गया और स्वाभाविक-भावसे बातचीत करने लगा – यह देखकर चारुको बहुत ही आराम मिला । उसने तुरत लेखकी बात छेड़ दी ; बोली—"आज मैं 'अमावस्याका प्रकाश' लिख रही थी ; और जरा चूक जाती तो वे देख ही लेते !"

चारुने निश्चय समझ रखा था कि अमल उसकी नई रचना देखनेके लिए आग्रह करेगा और उसके पीछे पड़ जायगा । और, इसी अभिप्रायसे उसने अपनी कापी निकालकर जरा हिलाई-डुलाई भी । परन्तु, अमलने मात्र

एक बार तीव्र दृष्टिसे चारुके चेहरेकी ओर देखा, – उसने क्या समझा और क्या सोचा, सो वही जाने, – किन्तु दूसरे ही क्षण वह चौंककर उठ खड़ा हुआ। पर्वत-मार्गसे चलते-चलते पथिकने मानो सहसा मेघका कुहरा दूर होते ही चौंककर सामने देखा कि हजार हाथ गहरे-गड्ढेमें वह पाँव रखने जा रहा था ! अमल बिना कुछ बोले ही चुपचाप बाहर चला गया।

अमलके इस अभूतपूर्व आचरणका कुछ अर्थ ही चारुकी समझमें न आया ; वह स्तब्ध बैठी उसके चलनेकी गति देखती रह गई।

११

दूसरे दिन भूपतिको फिर बेवक्त घर आना पड़ा। चारुको उन्होंने अपने पास बुलाकर कहा—"चारु, अमलके लिए एक बड़ी अच्छी सगाई आई है।"

चारु अन्यमनस्क थी। बोली—"अच्छी क्या आई है ?"

भूपतिने कहा—"सगाई।"

चारु बोल उठी—"क्यों, मैं क्या पसन्द नहीं आई ?"

भूपति जोरसे हँस पड़े। बोले—"तुम पसन्द आईं या नहीं, यह बात अभी तक अमलसे पूछी नहीं गई। और अगर आ भी गई होगी, तो मेरा भी तो थोड़ा-बहुत हक है, उसे मैं चटसे नहीं छोड़नेका !"

चारु कहने लगी—"अः, क्या बक रहे हो जिसका ठीक नहीं ! तुमने कहा नहीं था अभी कि तुम्हारी सगाई आ रही है ?"

चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा।

भूपतिने कहा—"तो क्या दौड़ा-दौड़ा तुमसे ही कहने आता ? कोई इनाम मिलनेकी तो आशा थी ही नहीं !"

चारु पूछने लगी—"तो किसकी सगाई, अमलकी आई है ? अच्छा ही तो है। फिर देर किस बातकी, कर डालो पक्की।"

भूपतिने कहा—"वर्धमानके वकील हैं एक, रघुनाथ बाबू, वे अपनी लड़कीके साथ अमलका ब्याह करके उसे पढ़नेके लिए विलायत भेजना चाहते हैं।"

चारुने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"विलायत ?"

भूपतिने कहा—"हाँ, विलायत।"

चारु बोली—"अमल विलायत जायगा ? यह बहुत अच्छा रहा ! अच्छा ही हुआ। तुम उसे एक बार पूछ तो देखो !"

भूपतिने कहा—"मेरे कहनेके पहले तुम एक बार उसे समझाकर कहोगी तो ठीक रहेगा।"

चारुने कहा—"मैं तो हजार बार कह चुकी। मेरी बात मानता कौन है ! मुझसे अब नही कहा जायगा।"

भूपति—"तुम्हें क्या मालूम होता है, वह ब्याह नही करेगा ?"

चारु—"और भी तो बहुत बार कोशिश की जा चुकी है, कहाँ कोई राजी होता है !"

भूपति—"लेकिन अबकी बार इस मौकेको हाथसे जाने देना उसके लिए ठीक नही। मेरे ऊपर बहुत कर्जा हो गया है, अमलको अब तो मैं पहलेकी तरह नही रख सकता।"

भूपतिने अमलको बुलवा लिया। अमलके आनेपर उन्होंने कहा—"वर्धमानके वकील रघुनाथ बाबू अपनी लड़कीकी तुमसे सगाई करना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि ब्याह हो जानेके बाद तुम्हें पढानेके लिए विलायत भेजें। तुम्हारी क्या राय है ?"

अमलने कहा—"आपकी अगर आज्ञा हो तो मेरी तरफसे कोई आपत्ति नही।"

अमलकी बात सुनकर भूपति और चारु दोनोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। इस बातकी किसीको आशा ही नही थी कि कहते ही वह राजी हो जायगा।

चारु तीव्र स्वरमें मजाक उड़ाती हुई बोली—"आज तो भइयाकी आज्ञा होते ही अपनी राय दे दी ! अहा, कैसे आज्ञाकारी भाई हैं, जरा देखो तो ! भइयापर ऐसी भक्ति अब तक कहाँ गई थी, लालाजी !"

अमलने कुछ उत्तर न देकर जरा हँसनेकी कोशिश की।

अमलकी इस चुप्पीको देखकर चारुने मानो उसे चेता देनेके लिए दूनी

झड़पके साथ कहा—"ऐसा क्यों नहीं कहते कि अपनी ही तबीयत हो रही है! हुंः, मन-मन भावे, मुँड़ी हिलावे!"

भूपति हँसते-हुए बोले—"मालूम होता है अमल तुम्हारे ही खातिर अब तक सिर हिला रहा था कि कहीं देवरानीकी बात सुनकर तुम्हें डाह न होने लगे!"

इस बातसे चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा। वह कोलाहलके साथ कहने लगी—"डाह! क्यों नहीं! मुझे डाह कब्भी नहीं होता। मुझसे ऐसा कहना तुम्हारा बड़ा अन्याय है, हाँ!"

भूपति बोले—"लो, देखो! अपनी स्त्रीसे भी मजाक नहीं कर सकता!"

चारुने कहा—"नहीं, ऐसा मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता।"

भूपतिने कहा—"अच्छा, अच्छा बड़ा-भारी कसूर हो गया; माफ करो। खैर, – तो ब्याहकी बात ठीक हो गई न?"

अमलने कहा—"हाँ।"

चारु बोली—"लड़की अच्छी है या बुरी, इतना भी देखनेका सबर न हुआ, लालाजी! तुम्हारी ऐसी दशा हो आई है, कभी जरा आभास भी तो दिया होता!"

भूपतिने कहा—"अमल, लड़की देखना चाहो तो उसका भी इन्तजाम किया जा सकता है। खबर ली है मैंने, लड़की सुन्दर है।"

अमल—"नहीं, देखनेकी मैं तो कोई जरूरत नहीं समझता।"

चारु—"इनकी बात तो सुनो! ऐसा भी होता है कहीं! पर हम लोगोंको तो कम-से-कम देख लेनी चाहिए।"

अमल—"नहीं, भाई साहब, देखा-देखीमें झूठ-मूठको देर करनेकी क्या जरूरत?"

चारु—"जरूरत क्या है, जी! देर होनेसे छाती जो फटने लगेगी! तुम मौर बाँधकर अभी निकल पड़ो न! क्या खबर, तुम्हारी राज-सम्पदा हीरा-जवाहरातको कोई और उड़ा ले गया तो!"

अमलको चारुका कोई भी मजाक विचलित न कर सका।

चारु फिर बोली—"विलायत भागनेके लिए भीतरसे तुम्हारा मन फड़फड़ा रहा है, क्यों ? यहाँ तुम्हें कोई मार रहा था या बाँध रहा था ? हैट-कोट पहनके साहब बगैर बने आजकलके लड़कोंका मन ही नही भरता ! लालाजी, विलायतसे लौटकर हम जैसे काले आदमियोंको पहचान तो लोगे ?"

अबकी बार अमलने जबाब दिया—"तो फिर विलायत जाना ही क्या हुआ !"

भूपतिने हँसकर कहा—"काले रूपको भुलानेके लिए ही तो सात समुद्र पार जाना है ! सो, इसमें डरनेकी क्या बात है, चारु, हम तो हैं ही, कालेके भक्तोंकी यहाँ कमी न होगी ।"

भूपतिने खुश होकर उसी वक्त वर्धमानको चिट्ठी लिख दी ।

ब्याहका दिन भी ठीक हो गया ।

१२

इस बीचमें भूपतिको अखबार बन्द कर देना पड़ा । भूपतिके लिए उसका खर्चा चलाना मुश्किल हो गया । 'सर्वसाधारण' नामक जिस विशाल निर्मल पदार्थकी साधनामें भूपति इतने दिनोसे एकाग्र-चित्तसे लगे हुए थे उसे मात्र एक क्षणमें बहा देना पड़ा । भूपतिके जीवनकी समस्त चेष्टाएँ जो अभ्यस्त मार्गसे गत बारह वर्षोंसे अविच्छिन्न धारामें बहती आ रही थी वे सहसा एक जगह मानो गहराईमें डूब गईं । इसके लिए भूपति जरा भी तैयार नही थे । अकस्मात् बाधाप्राप्त अपने इतने दिनोंके उद्यमोंको अब वे कहाँ ले जायें ? मानो वे भूखे अनाथ बच्चोंकी तरह उनका मुंह ताकने लगे । अन्तमें थककर भूपतिने उन्हें अपने अन्तःपुरमें करुणामयी सेवा-परायणा नारीके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया ।

किन्तु नारी उस समय क्या सोच रही थी ? वह मन-ही-मन कह रही थी, 'कैसे आश्चर्यकी बात है ! अमलका ब्याह होगा, यह तो अच्छी ही बात है ! पर इतने दिनों बाद हमलोगोंको छोड़कर पराये घर ब्याह करके विलायत जायगा, इससे अमलके मनमें थोड़ी देरके लिए एक बार भी दुबिधा

उत्पन्न नहीं हुई ? इतने दिनों तक हमने जो उसे इतने जतनसे रखा, उसका कुछ भी खयाल न करके ज्यों ही जरा भागनेका रास्ता मिला, चटसे कमर कसके तैयार हो गया वह ! मानो वह इतने दिनोंसे इसी दिनकी प्रतीक्षामें रहा हो ! और मुँहसे कितनी मीठी-मीठी बातें, कितना प्रेम ! हाय री दुनिया, आदमीको पहचानना मुश्किल है ! कौन जानता था कि जो आदमी इतना लिख सकता है उसके हृदय जरा भी नहीं !'

अपने परिपूर्ण हृदयसे तुलना करके चारुने अमलके हृदयकी अत्यन्त अवज्ञा करनेकी कोशिश की ; पर कर न सकी। भीतर-ही-भीतर निरन्तर एक वेदनाका उद्रेक तप्त शूलकी तरह उसके अभिमानको उकसाने लगा।

अमल आज बाद कल चला जायगा, फिर भी इधर कई दिनोंसे उसका पता ही नहीं। उन दोनोंमें परस्पर जो मनोमालिन्य-सा हो गया है उसे मिटा डालनेके लिए भी जरा फुरसत नहीं मिली ! चारु प्रतिक्षण सोच रही है कि अमल अपने-आप आयेगा। इतने दिनोंके मेल-जोलको वह इस तरह नहीं तोड़ेगा। किन्तु कहाँ आया अमल ! नहीं आया। अन्तमें जब विलायत जानेका दिन करीब आ पहुँचा, तब चारुने खुद ही अमलको बुलवाया।

अमलने कहला भेजा, 'थोड़ी देर बाद आता हूँ।'

चारु अपने बरामदेमें वहाँ-की-वहीं एक चौकीपर बैठ गई। सवेरेसे बदली होनेसे उमस हो रही थी, चारु अपने खुले बालोंको यों ही ढीले तौरसे लपेटकर अपने थके-हुए शरीरपर पंखेसे धीरे-धीरे हवा करने लगी।

दूरसे गिरजेकी घड़ीमें ग्यारह बजनेका घंटा सुनाई दिया। नहा-धोकर भूपति अभी भोजन करने आयेंगे। अब मात्र आध घण्टा समय है। अब भी अगर अमल आ जाय ! जैसे भी हो, उसे इन कई दिनोंका नीरव मनोमालिन्य मिटा ही डालना है। अमलको इस तरहसे विदा नहीं किया जा सकता। इन समवयस्क देवर-भौजाईमें जो हमेशासे मधुर सम्बन्ध चला आ रहा है, जिसमें अनेकों बार अड्डी-मेल, रूठना-मनाना, स्नेहके उपद्रव होते रहे हैं, और पवित्र सुखालोचनासे जकड़ा-हुआ जो चिर-छायामय लता-कुञ्ज

बन चुका है, अमल क्या उसे आज धूलमें मिलाकर बहुत दिनोंके लिए बहुत दूर चला जायगा ? उसे जरा भी पश्चात्ताप न होगा ? उसकी जड़में क्या अन्तिम पानी भी न सींचेगा, उनके बहुत दिनोंके देवर-भाभीके सम्बन्धका शेष अश्रु-जल ?

अब वह बचा-खुचा आध घण्टा भी बीतना चाहता है। ढीले बालोंको खोलकर उनमेंसे एक गुच्छा हाथमें लेकर चारु उसे उंगलीपर लपेटने और खोलने लगी। आँसू रोके रुकते ही नहीं।

नौकरने आकर कहा—"बहूजी, बाबूजीके लिए डाभ निकालना है।"

चारुने आँचलसे चाभियोंका गुच्छा खोलकर झन्न-से नौकरके आगे फेंक दिया ; और नौकर अचम्भेमें आकर चाभी उठाकर चल दिया।

चारुकी छातीके भीतरसे कोई चीज ऊपरको आने लगी।

यथासमय भूपति हँसते-हुए खाने बैठे। चारु पंखा हाथमें लिये चौकेमें आकर देखती है कि अमल भी भूपतिके साथ आया है। चारुने उसके मुंहकी ओर नहीं देखा।

अमलने पूछा—"भाभी, मुझे बुलाया था ?"

चारुने कहा—"नहीं, अब जरूरत नहीं।"

अमल बोला—"तो मैं जाऊँ, मुझे चीज-वस्त सब सम्हालनी हैं ?"

चारुने दीप्त दृष्टिसे एक बार अमलके मुंहकी ओर देखा ; और फिर कहा—"जाओ।"

अमल चारुके मुंहकी ओर एक बार देखकर चला गया। भोजन करनेके बाद भूपति कुछ देर तक चारुके पास बैठा करते हैं। आज वे लेन-देन और हिसाबके झंझटमें बहुत ही व्यस्त थे, लिहाजा भीतर ज्यादा देर ठहर न सकनेके कारण, कुछ क्षुण्ण होकर बोले—"आज मैं ज्यादा ठहर नहीं सकूंगा, चारु, बहुत झंझट है।"

चारुने कहा—"तो जाते क्यों नहीं !"

भूपतिने सोचा, चारु रूठ गई। बोले—"इसका मतलब यह नहीं कि अभी तुरत ही चला जाऊँ ! थोड़ी देर आराम करके जाऊँगा।"

उन्होंने देखा कि चारु उदास हो गई है, इसलिए बहुत देर तक अनुतप्त चित्तसे बैठे रहे ; पर किसी भी तरह बातचीतका सिलसिला न जमा सके। बहुत देर तक बातचीत करनेकी वृथा कोशिश करनेके बाद बोले—"अमल तो कल चला जायगा, कुछ दिन तुम्हें बिलकुल सूना-सूना-सा मालूम होगा।"

चारु बिना कुछ जवाब दिये ही कोई चीज लानेके लिए चटसे दूसरे कमरेमें चली गई। भूपतिने कुछ देर तक बाट देखी, फिर वे बाहर चले गये।

चारु आज अमलके चेहरेकी तरफ देखकर ताड़ गई थी कि इन्हीं कई दिनोंमें वह बहुत दुबला हो गया है ; उसके चेहरेपर तरुणताकी वह स्फूर्ति बिलकुल ही नहीं रही! इससे चारुको खुशी भी हुई और वेदना भी। आसन्न विच्छेदने ही अमलको सुखा दिया है, इसमें चारुको सन्देह न रहा ; किन्तु फिर भी अमलका ऐसा सलूक क्यों? क्यों वह दूर-दूर छिपा-छिपा फिरता है? विदाईके समयको क्यों वह इच्छापूर्वक ऐसा विरोध-कटु बनाता जा रहा है?

बिस्तरपर पड़ी सोचते-सोचते सहसा वह उठके बैठ गई। अचानक उसे मन्दाकी बात याद आ गई। सोचने लगी, 'शायद ऐसा हो कि मन्दासे अमलका प्रेम हो गया हो! मन्दाके चले जानेसे ही शायद अमल इस तरह,– छिः! अमलका मन क्या ऐसा ओछा हो सकता है! इतना क्षुद्र नहीं है वह। इतना कलुषित हो सकता है भला कि विवाहित स्त्रीपर उसका मन हो! असम्भव है।' सन्देहको दूर करनेकी उसने काफी कोशिश की, पर सन्देह उसे जोरसे काटता ही रहा।

इसी तरह विदाका समय भी आ पहुँचा, पर बादल साफ नहीं हुए।

अमल आया। कम्पित कण्ठसे बोला—"भाभी, मेरे जानेका समय हो गया। अबसे तुम खुद भाई साहबकी देख-भाल करना। इस समय वे बड़े संकटमेंसे गुजर रहे हैं। तुम्हारे सिवा उनके लिए और कहीं भी सान्त्वनाकी जगह नहीं। उनका पूरा ध्यान रखना, भाभी!"

भूपतिके उदास म्लान भावको देखकर अमलने उनकी भीतरी हालतका पता लगा लिया था। वह इन बातोंका खयाल करके कि 'भूपति किस तरह चुपचाप अपने दुःख और दुर्दशासे अकेले खड़े लड़ रहे हैं, किसीसे

सहायता या सान्त्वना तक उन्हें नहीं मिली, और फिर भी अपने आश्रित पालित आत्मीय स्वजनोंको उन्होंने इस प्रलय-संकटमें भी विचलित नहीं होने दिया', चुप रहा। उसके बाद उसने चारुकी बात सोची, फिर अपनी बात बिचारी। उसके कान सुर्ख हो उठे। वह जोरसे कह उठा—"चूल्हेमें जाय 'असाढ़का चाँद' और 'अमावस्याका प्रकाश'! मैं अगर बैरिस्टर होकर भाई साहबकी कुछ मदद कर सका, तभी मैं पुरुष हूं।"

पिछली रातको सारी रात जागकर चारुने सोच रखा था कि विदा देते समय अमलको वह क्या कहेगी। सहास्य अभिमान और प्रसन्न उपेक्षासे माज-माजकर शब्दोंको उसने मन-ही-मन उज्ज्वल और धारदार बना लिया था। पर विदा करते समय चारुके मुंहसे कोई बात ही नहीं निकली। सिर्फ उसने इतना ही कहा—"चिट्ठी तो दिया करोगे न!"

अमलने जमीनसे सिर लगाकर चारुको प्रणाम किया।

चारु तेजीसे भाग गई वहाँसे। और कमरेमें जाकर भीतरसे किवाड़ बन्द कर लिये उसने।

१२

भूपतिने यथासमय वर्धमान जाकर अमलका ब्याह कर दिया; और उसके बाद अमलको विलायत रवाना करके वे घर लौट आये।

चारों तरफसे चोटें खा-खाकर विश्वास-परायण भूपतिके मनमें बाहरी संसारके प्रति एक तरहका वैराग्य-सा हो गया था। अब उन्हें सभा-समिति और मिलना-जुलना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वे सोचते, 'इन-सब बातोंमें मैंने अपनेको ही ठगा। जीवनके सुखके दिन व्यर्थ ही बीत गये, जीवनका सार-भाग मैंने घूरेमें बहा दिया!'

मन-ही-मन वे कहने लगे, 'जाने दो। अखबार जाता रहा, अच्छा ही हुआ। मुक्त हो गया मैं।' संध्याके समय अँधेरेका सूत्रपात देखते ही पक्षी जैसे अपने नीड़ या घोंसलेको लौटता है, भूपति भी उसी तरह अपना बहुत दिनोंका संचरण-क्षेत्र त्यागकर अन्तःपुरमें चारुके पास पहुँच गये।

मन-ही-मन उन्होंने तय कर लिया कि 'बस, अब और कहीं नहीं जाना ; यहीं मेरी स्थिति है। जिस अखबारी जहाजको लेकर मैं दिन-भर खेला करता था वह डूब गया : अब घरकी शरण लूं।'

भूपतिके मनमें शायद एक संस्कार-सा बैठा हुआ था कि 'अपनी स्त्रीपर किसीको अधिकार नहीं जमाना पड़ता, स्त्री ध्रुवताराकी तरह अपना दीप आप ही जलाये रखती है। वह दीप न तो हवासे बुझता है और न तेलकी ही परवाह करता है। बाहर जब टूटना-फूटना शुरू हुआ था, तब भूपतिके इतनी भी मनमें न आई कि भीतर अन्तःपुरमें भी कहीं कोई दरार पड़ी है या नहीं, इस बातको परख देखें।

शामके वक्त भूपति वर्धमानसे लौटे। झटपट मुंह-हाथ धोकर जल्दीसे खा-पीकर निरचू हो गये। अमलके ब्याह और विलायत-यात्राका आद्योपान्त वर्णन सुननेके लिए चारु स्वभावतः उत्सुक होगी, यह जानकर उन्होंने आज भीतर जानेमें जरा भी देर नहीं की। सीधे सोनेके कमरेमें जाकर बिस्तरपर लेट गये ; और हुक्केकी लम्बी नली मुंहमें लेकर धुआँ फेंकने लगे। किन्तु चारु अभी तक आई नहीं, शायद वह घरका काम-धन्धा कर रही होगी। इधर तमाखू जल जानेके बाद भूपतिको नींद आने लगी। क्षण-क्षणमें नींद उचट जाती तो वे चौंककर उठ बैठते ; और सोचते, अभी तक चारु आ क्यों नहीं रही है! अन्तमें भूपतिसे रहा नहीं गया। उन्होंने चारुको बुलवा भेजा।

चारुके आनेपर भूपतिने पूछा—"चारु, आज इतनी देर क्यों कर ली?"

चारुने कोई जवाबदेही न करके कहा—"हाँ, आज देर हो गई।"

चारुके आग्रहपूर्ण प्रश्नके लिए भूपति प्रतीक्षा करते रहे ; पर चारुने कुछ पूछा ही नहीं। इससे भूपति कुछ दुःखित हुए। सोचने लगे, 'तो क्या चारुका अमलसे स्नेह नहीं था? अमल जब तक यहाँ मौजूद था तब तक चारु उसके साथ खूब हँसती-खेलती रही ; और ज्यों ही वह चला गया त्यों ही उसके विषयमें ऐसी उदासीनता!' ऐसे विपरीत व्यवहारसे भूपतिके मनमें खटका-सा हो गया ; वे सोचने लगे, 'तो क्या चारुके हृदयमें गहराई नहीं

है ! वह सिर्फ हँसना-खेलना ही जानती है। स्नेह-प्रेम कुछ भी नहीं कर सकती ! स्त्रियोंके लिए ऐसा अनासक्तिका भाव तो अच्छा नहीं !'

चारु और अमलकी मित्रतासे भूपतिको खुशी होती थी। इन दोनोंका लड़कपन, अड्डी और मेल, सलाह और खेल, उनके लिए कुतूहलकी चीज थी। चारु जो अमलकी हमेशा खातिरदारी किया करती थी उससे चारुकी सुकोमल सहृदयताका परिचय पाकर भूपति मन-ही-मन प्रसन्न होते थे।

मगर आज, वे आश्चर्यके साथ सोचने लगे, यह सब-कुछ क्या ऊपरी बातें थीं ? हृदयमें क्या उनकी कहीं कोई जड़ ही नहीं !' और फिर उन्होंने सोचा, 'चारुके अगर हृदय नहीं, तो अब मैं वहाँ जाकर कहाँ आश्रय लूंगा ?'

धीरे-धीरे परीक्षा करनेके लिए भूपतिने बात छेड़ी—"चारु, तुम थीं तो अच्छी तरह ? तबीयत तो खराब नहीं रही ?"

चारुने संक्षेपमें उत्तर दिया—"नहीं। अच्छी ही थी।"

भूपतिने कहा—"अमलका ब्याह तो हो गया –"

इतना कहकर वे चुप हो रहे। चारुने समयोचित कोई बात कहनेकी कोशिश की ; पर उसके मुंहसे बात ही नहीं निकली। वह जड़वत् चुप बैठी रही।

भूपतिका स्वभाव है कि वे किसी चीजको गौरके साथ नहीं देखते, किन्तु अमलकी विदाईका दुःख उनके अपने मनमें लगा हुआ था, इसलिए चारुकी उदासीनतासे उन्हें चोट पहुँची। उनकी इच्छा थी कि समवेदनासे व्यथित चारुके साथ अमलकी बातचीत करके हृदयका भार कुछ हलका कर लें।

भूपतिने कहा—"लड़की देखनेमें तो बहुत अच्छी है ! – क्या, चारु, सो रही हो क्या ?"

चारु बोली—"नहीं।"

भूपतिने कहा—"बेचारा अमल अकेला चला गया। जब उसे रेलमें बिठाया, तो वह बच्चेकी तरह रोने लगा। देखकर इस बुढ़ापेमें भी मैं अपने आँसू न रोक सका। डब्बेमें दो अंगरेज बैठे हुए थे : मरदोंको रोते देख वे मजे लेने लगे थे !"

बत्ती बुझी-सी करके पलंगके अँधेरेमें पहले तो चारु करवट लेकर सो गई; उसके बाद अचानक जल्दीसे बिस्तरसे उठके बाहर चली गई। भूपतिने चौंककर पूछा—"तबीयत कुछ खराब है क्या, चारु?"

कोई उत्तर न पाकर वे भी उठ बैठे। पासके बरामदेसे दबे-हुए रोनेका शब्द सुनकर वे घबराये हुए बरामदेमें पहुँचे। देखा तो, चारु वहाँ जमीनपर औंधी पड़कर अपने रोनेको दबानेकी कोशिश कर रही है! चारुके ऐसे जबरदस्त शोकोच्छ्वासको देखकर भूपति दंग रह गये। सोचने लगे, 'चारुको क्या मैंने गलत समझा था? चारुका स्वाभाव इतना भीतरा कि मेरे पास भी हृदयकी कोई वेदना प्रकट नहीं करना चाहती! जिनकी ऐसी प्रकृति है उनका प्रेम गहरा होता है, और उनकी वेदना भी शायद बहुत ज्यादा होती है।' भूपतिने मन-ही-मन विचारकर यह तय कर लिया कि 'चारुका प्रेम साधारण स्त्रियोंके समान बाहर देखनेमें नहीं आता।' उन्होंने चारुके प्रेमका ऐसा उच्छ्वास पहले कभी नहीं देखा। आज वे खास तौरसे समझ गये कि चारुके प्रेमका गुप्त फैलाव भीतरकी ओर ही ज्यादा है। भूपति खुद भी बाहर प्रकट करनेमें अपटु हैं; और इसलिए अपनी स्त्रीकी प्रकृतिमें भी हृदयावेगकी गभीर अन्तःशीलताका परिचय पाकर उन्हें एक तरहकी तृप्ति मालूम हुई।

भूपति चारुके पास बैठ गये; और कोई बात न करके धीरे-धीरे उसकी देहपर हाथ फेरने लगे। कैसे सान्त्वना दी जाती है, भूपति इस बातको नहीं जानते। वे इस बातको समझे ही नहीं कि शोकको जब कोई अँधेरेमें गला दबाकर मार डालना चाहता है तब वहाँ किसी साक्षीका बैठा रहना उसे अच्छा नहीं लगता।

१४

भूपतिने जब अपने अखबारके कामसे छुट्टी ली थी तब उन्होंने अपने मनमें भविष्यका एक चित्र खींच लिया था। उन्होंने प्रत्तीज्ञा की थी कि वे किसी तरहकी दुराशा या दुश्चेष्टामें नहीं फँसेंगे। चारुको लेकर पढ़ने-लिखने,

लाड़-प्यार करने, प्रेम और प्रतिदिनके गार्हस्थिक कर्तव्य पालन करनेमें जीवन बिता देंगे। सोचा था कि 'जो गार्हस्थिक सुख सबसे सुलभ और साथ ही मधुर है, हमेशा हिलाने-डुलाने लायक और साथ ही पवित्र और निर्मल है, उसी सहज-प्राप्य सुखसे वे अपने जीवन-गृहके एक कोनेमें सांध्य-दीप जलाकर एकान्त-शान्तिकी अवतारणा करेंगे।' कारण, हँसी-मजाक, गप-शप, आपसमें मनोरंजनके लिए छोटी-मोटी बातें करना, उन सबमें ज्यादा कोशिशकी जरूरत नही और सुख भी काफी है।

किन्तु, काम पड़नेपर देखा गया कि वह सुख इतना सहज नहीं है। जिसे कीमत देकर नही खरीदना पड़ता वह अगर अपने हाथके पास अपने-आप न मिले, तो उसे फिर कहींसे किसी तरह ढूँढ निकालना मुश्किल है।

आखिर भूपति किसी भी तरह चारुके साथ घनिष्ठता न जमा सके। इसके लिए उन्होंने अपनेको ही दोषी ठहराया। सोचा कि बारह साल तक लगातार अखबारमें लिखते-लिखते वे, स्त्रीके साथ कैसे बातचीत या गप-शप की जाती है, इस विद्याको ही भूल गये हैं। अब सांध्य-दीपके जलते ही भूपति आग्रहके साथ घर आ जाते हैं। वे दो-एक बात करते हैं, और चारु भी दो-एक बात करती है; किन्तु उसके बाद उनकी कुछ समझ ही में नही आता कि क्या करें। अपनी इस असमर्थतासे स्त्रीके सामने वे लज्जित होते रहते हैं। हाय-हाय, बेचारने अपनी स्त्रीके साथ गप-शप करना जितना सहज समझ रखा था, उस मूढ़के लिए वह उतना ही कठिन निकला! इससे तो सभामें व्याख्यान देना कहीं सहज है।

संध्याके बादके जिस समयको उन्होंने हँसी-मजाक और लाड़-प्यारसे रमणीय बना डालनेकी कल्पना की थी उस समयका काटना अब उनके लिए एक समस्या-सी हो गई। कुछ देर तक कोशिशके बाद वे मौन रहकर सोचते कि उठकर चल दें; पर उठके चले आनेसे चारु क्या सोचेगी, यह सोचकर उनसे उठा भी नहीं जाता। कहते, "चारु, ताश खेलोगी?" चारु और कोई उपाय न देखकर कहती, "हाँ।" और इच्छा न होते हुए भी ताश उठा

लाती ; और खेलने लगती। किन्तु अन्तमें काफी गलतियाँ करके हार जाती। उस खेलमें किसीको भी कोई आनन्द नहीं आता।

भूपतिने बहुत सोच-विचारकर एक दिन चारुसे पूछा—"चारु, मन्दाको बुला लिया जाय तो कैसा रहे ? तुम बिलकुल अकेली पड़ गई हो।"

चारु मन्दाका नाम सुनते ही भक-से जल उठी। बोली—"नहीं, मन्दाकी मुझे जरूरत नहीं।"

भूपति हँस दिये ; और मन-ही-मन खुश भी हुए। सोचने लगे, सती-साध्वी स्त्रियाँ जहाँ सती-धर्मका जरा भी व्यतिक्रम देखती हैं वहाँ धीरज नहीं रख सकतीं !

विद्वेषके पहले धक्केको सम्हालकर चारुने सोचा, 'मन्दा रहेगी तो शायद भूपतिको वह बहुत-कुछ प्रसन्न रख सकेगी।' इस बातको समझकर वह दुःखित हो रही थी कि पति उससे मानसिक सुख चाहते हैं, और उससे वह किसी भी तरह देते नहीं बनता। उसके पति संसारकी और-सब बातोंको छोड़कर एकमात्र उसीसे अपने जीवनका सारा आनन्द आकर्षित करनेकी कोशिश कर रहे हैं – इस एकाग्र चेष्टाको देखकर और अपने हृदयकी दीनता अनुभव करके चारु यकायक डर-सी गई। सोचने लगी, 'इस तरहसे कैसे और कब तक दिन कटेंगे ? वे और-किसी चीजका सहारा क्यों नहीं लेते ? और-कोई अखबार क्यों नहीं निकाल देते ?' असलमें पतिके मनोरञ्जनके लिए अब तक उसे कोई भी अभ्यास नहीं करना पड़ा, पतिने उससे कभी किसी तरहकी सेवा नहीं चाही, किसी तरहका सुख भी नहीं चाहा ; और न उन्होंने अपने लिए सब तरहसे उसे कभी आवश्यक ही बनाया है। आज वे सहसा अपने जीवनकी सम्पूर्ण आवश्यकताएँ चारुसे ही पूरी करना चाहते हैं ! और ऐसी हालतमें, चारुको अब कहीं कुछ सुझाई नहीं देता। उसके पतिको क्या चाहिए, क्या होनेसे उन्हें तृप्ति होगी, इस बातको वह ठीक तौरसे जानती नहीं ; और जान भी जाय तो अब पूरा करना उसके बूतेसे बाहरकी बात है।

भूपति अगर धीरे-धीरे आगे बढ़ते, तो चारुके लिए शायद इतनी कठिनाई नहीं होती ; किन्तु सहसा, एक रातमें देवालिया होकर उन्होंने जो रीता

भिक्षापात्र चारुके आगे बढ़ा दिया, उससे वह बड़े पसोपेशमें पड़ गई।

अन्तमें चारुने कहा—"अच्छा, मन्दाको बुलवा लो। उसके रहनेसे तुम्हारी सेवा-टहलमें बहुत-कुछ सहूलियत हो जायगी।"

भूपतिने हँसकर कहा—"मेरी सेवा-टहल! मेरे लिए और-किसीकी कोई जरूरत नहीं, चारु!"

और वे दुःखित होकर सोचने लगे, 'मैं बड़ा नीरस आदमी हूं, चारुको किसी तरह मैं सुखी नहीं कर पाता।'

अन्तमें बहुत सोच-विचारकर अबकी बार उन्होंने साहित्य-चर्चामें मन लगाया। मित्रोंमेंसे कोई उनके घर आता, तो आश्चर्यके साथ देखता कि भूपति टेनिसन, बायरन, बंकिमचन्द्र आदिकी रचनाओंमें गले तक डूबे हुए हैं! भूपतिके इस अकाल-काव्यानुरागको देखकर उनके मित्र खूब मजाक उड़ाने लगे। भूपति हँसके कहते—"बाँसमें भी फूल लगते हैं, पर कब लगते हैं इसका कोई ठीक नहीं!"

एक दिन शामके वक्त भूपतिने अपने कमरेकी बड़ी बत्ती जलाकर, बहुत ही संकोचके साथ, चारुसे कहा—"एक रचना पढ़के सुनाऊं?"

चारुने कहा—"सुनाओ न!"

भूपतिने कहा—"क्या सुनाऊँ?"

चारु बोली—"जो तुम्हारी इच्छा हो।"

स्त्रीकी तरफसे ज्यादा आग्रह न देखकर भूपतिका मन जरा दहल-सा गया। फिर भी साहस लाकर बोले—"टेनिसनकी किताबसे तरजुमा करके तुम्हें सुनाता हूं।"

चारुने कहा—"सुनाओ।"

किन्तु, हाय री विधि, सब मिट्टी हो गया। संकोच और निरुत्साहसे भूपतिका पढ़ना अटकने लगा, समझानेके लिए ठीक-ठीक शब्द उपस्थित नहीं हुए। और अन्तमें चारुकी शून्य दृष्टि देखकर वे समझ गये कि 'चारुका मन नहीं लग रहा है।' उस दीपालोकित छोटेसे कमरेमें, उस रातके एकान्त अवकाशमें वैसा भराव आया ही नहीं जैसा आना चाहिए था।

भूपतिसे और भी दो-एक बार ऐसी गलतियाँ हुई। और अन्तमें फिर उन्होंने स्त्रीके साथ साहित्य-चर्चाकी कोशिश करना छोड़ ही दिया।

१५

कोई जबरदस्त चोट लगनेसे जैसे स्नायु सुन्न पड़ जाती है और शुरू-शुरूमें दर्द मालूम ही नहीं होता, ठीक उसी तरह शुरू-शुरूमें अमलका अभाव चारुको अच्छी तरह मालूम ही नहीं हुआ।

अन्तमें, ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यों-त्यों अमलके अभावसे जीवनकी शून्यताकी गहराई क्रमशः बढ़ती ही गई। और इस शून्यताका पता लगते ही चारु हतबुद्धि-सी हो गई। सोचने लगी, हाय हाय, सुशीतल कुंज-वनसे निकलकर वह सहसा यहाँ किस मरुभूमिमें आ गई! दिनपर दिन बीतते जाते हैं, और मरुभूमिका विस्तार बढ़ता ही जाता है। इस मरुभूमिका पहले उसे जरा भी ज्ञान न था।

नींद उचटते ही सहसा उसकी छातीमें धक-सी हो जाती। याद आ जाती, अमल नहीं है! सवेरे जब वह बरामदेमें पान लगाने बैठती है तो क्षण-क्षणमें मालूम होता रहता है कि अमल पीछेसे नहीं आयेगा! कभी-कभी अन्यमनस्क होकर वह ढेरके ढेर पान लगा डालती और फिर सहसा याद उठ आती कि ज्यादा पान खानेवाला आदमी तो है ही नहीं! ज्योंही भण्डार-घरमें पैर रखती, उसे याद आ जाता कि अमलके लिए कलेवा नहीं निकालना है! मनका अधैर्य अन्तःपुरके सीमान्तमें जाकर उसे याद दिला देता, आज अमल कालेजसे नहीं आयेगा! किसी नई पुस्तककी, किसी नई रचनाकी, किसी नई खबर या नये मजाककी किसीसे आशा ही नहीं करना है उसे! न कोई सिलाईका काम करना है, न कोई लेख लिखना है, न कोई शौकीनीकी चीज ही खरीदकर रखना है! कैसी शून्यता है जिसका अन्त ही नहीं!

चारु अपने इस असह्य कष्ट और चांचल्यसे खुद परेशान है। मनोवेदना से लगातार पीड़ित होते-होते आखिर उसे डर मालूम होने लगा। बार-बार वह अपने-आपसे पूछने लगी, 'क्यों, इतना दुःख क्यों हो रहा है? अमल

मेरा ऐसा क्या लगता है जो उसके लिए इतना कष्ट सहूँ ? मुझे हो क्या गया ? इतने दिनों बाद मुझे यह क्या हो गया ? नौकर-नौकरानी और रास्तेके मजूर तक निश्चिन्त होकर घूमते-फिरते हैं, और मेरा ऐसा हाल ! भगवानने मुझे ऐसी आफतमें क्यों डाल दिया ?'

चारु अपने मनसे बार-बार प्रश्न किया करती और आश्चर्यमें उलझती रहती ; किन्तु उसके दुःखमें जरा भी कमी नहीं आती । अमलकी स्मृति उसके अन्तरंग और बहिरंगमें ऐसी घुल-मिल गई कि कहीं भी उसे भागे राह नहीं मिलती ।

पतिका फर्ज था कि अमलकी स्मृतिके आक्रमणसे चारुकी रक्षा करता ; किन्तु ऐसा न करके, बेचारा विच्छेद-व्यथित स्नेहशील मूढ़ पति बार-बार उसे अमलकी ही बात याद दिला देता है ।

अन्तमें चारुने बिलकुल ही पतवार छोड़ दी । अपनेसे लड़ना उसने बन्द कर दिया ; और हार मानकर अपनी अवस्थाको बिना विरोधके स्वीकार कर लिया । अमलकी स्मृतिको उसने आदरके साथ हृदयमें प्रतिष्ठित कर लिया ।

होते-होते ऐसा हो गया कि चारुके लिए एकाग्र-चित्तसे अमलका ध्यान करना अपने मनमें छिपे-हुए गर्वका विषय हो गया ; मानो अमलकी स्मृति ही उसके जीवनका श्रेष्ठ गर्व हो !

घरके काम-धन्धेसे फुरसत पानेके बाद उसने इसके लिए एक समय निश्चित कर लिया । उस समयमें वह एकान्त कमरेमें, दरवाजा बन्द करके अमलके साथ अपने जीवनकी प्रत्येक घटनाकी याद किया करती । कभी तकियेपर औंधी पड़कर बार-बार कहती रहती, 'अमल, अमल, अमल !' और समुद्र पारसे मानो उसके कानमें उत्तर आता, 'भाभी, भाभी, भाभी !' चारु अपनी डबडबाई-हुई आँखें मींचकर कहती, "अमल, तुम गुस्सा होकर चले क्यों गये ? मैंने किसी दिन कोई दोष नहीं किया । तुम अगर अच्छी तरह हँसी-खुशीसे विदा होकर जाते, तो शायद मैं इतना दुःख नहीं पाती ।" अमलके सामने जैसे वह उससे बात करती, ठीक उसी ढंगसे वह ये शब्द

कहती। कहती, 'अमल, मैं तुम्हें एक दिनके लिए भी नहीं भूली। एक दिन भी नहीं, एक क्षण भी नहीं! मेरे जीवनमें श्रेष्ठ वस्तुएँ सब तुम्हींने पनपाईं-खिलाई हैं। अपने जीवनके सार-भागसे प्रतिदिन मैं तुम्हारी पूजा किया करूँगी।'

इस तरह चारुने अपनी घर-गृहस्थी, अपने समस्त कर्तव्योंके अन्तस्तरके नीचे सुरंग खोदकर, उस निरालोक निस्तब्ध अन्धकारमें अश्रुमालासे सुसज्जित शोकका एक गुप्त मन्दिर बना लिया। वहाँ उसके पति या संसारके और किसी भी आदमीको जानेका अधिकार नहीं। वह स्थान जितना गोपनतम है उतना ही गभीरतम और उतना ही प्रियतम है। उसी द्वारसे वह अपने मन्दिरमें संसारके सम्पूर्ण छद्मवेशको त्यागकर अपने अनावृत आत्म-स्वरूपमें प्रवेश करती और वहाँसे बाहर निकालकर फिर नकाब पहनकर संसारके हास्यालाप और काम-धन्धेकी रंगभूमिपर आ जाती।

१६

इस तरह अपने मनके साथ द्वन्द्व-विवाद छोड़कर चारुने अपने गभीर विषादमें भी एक तरहकी शान्ति प्राप्त कर ली; और साथ ही एकनिष्ठ होकर अपने पतिकी भी वह भक्ति और सेवा करने लगी। भूपति जब सोते रहते तब वह धीरे-धीरे उनके पैरोंके पास अपना सिर रखकर उनकी चरण-रज अपने माथेसे लगाती। पतिकी सेवा-टहल और घर-गृहस्थीके काममें वह जरा भी त्रुटि नहीं करती। आश्रित और प्रतिपालित व्यक्तियोंके प्रति किसी तरहकी उपेक्षा होनेपर भूपति दुःखित होते हैं, इस बातका खयाल रखकर वह उस काममें कतई त्रुटि नहीं होने देती। इस तरह सब काम-काज पूरे करके वह भूपतिकी जूठी थालीका प्रसाद खाकर दिन बिता देती।

इस सेवा और जतनसे भग्नस्वास्थ्य और भग्नश्री भूपतिको मानो फिरसे नवयौवन वापस मिल गया। स्त्रीके साथ पहले मानो उनका नवविवाह नहीं हुआ था, मानो अभी हुआ है। उन्होंने साज-सजावट और हास्य-परिहाससे विकसित होकर दुनियादारीकी सम्पूर्ण दुश्चिन्ताओंको ढकेलकर एक किनारे

कर दिया। बीमारीसे उठनेके बाद जैसे भूख बढ़ जाती है और शरीरमें भोग-शक्तिके विकासकी सचेतनता अनुभव होने लगती है, भूपतिके मनमें भी उसी तरहके एक अपूर्व और प्रबल भावावेशका संचार होने लगा। वे मित्रोंसे, यहाँ तक कि चारुसे भी छिपाकर कविता पढ़ने लगे। मन-ही-मन बोले, 'अखबार बन्द करके और बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाकर इतने दिनों बाद अब मुझे स्त्री मिली है!'

एक दिन भूपतिने चारुसे कहा—"चारु, आजकल तुमने लिखना क्यों छोड़ दिया?"

चारुने कहा—"मैं तो बड़ा लिखना जानती हूँ!"

भूपतिने कहा—"सच कहता हूँ, चारु, मैं तो आजकलके किसी भी लेखकको तुम्हारी जैसी भाषा लिखते नहीं देखता! 'विश्वबन्धु' ने जो लिखा था, मेरा मत भी ठीक वही है।"

चारु बोली—"बस, रहने भी दो!"

भूपति "यह देखो न" कहकर 'सरोरुह' का एक अंक निकालकर चारु और अमलकी भाषाकी तुलना करने लगे। चारुका चेहरा सुर्ख हो उठा; उसने भूपतिके हाथसे अखबार छीनकर आँचलके भीतर छिपा लिया।

भूपतिने मन-ही-मन सोचा, 'जब तक लिखनेका साथी कोई न हो तब तक लिखना होता ही नहीं। ठहरो, मुझे भी लिखनेका अभ्यास करना होगा! फिर धीरे-धीरे चारुको भी लिखनेका उत्साह होने लगेगा।'

भूपति चारुसे छिपाकर लिखनेका अभ्यास करने लगे। कोश देखकर, बार-बार काट-कूटकर, बार-बार नकल करके, वे अपने बेकार-अवस्थाके दिन बिताने लगे। इतने कष्ट और इतनी कोशिशोंसे उन्हें लिखना पड़ रहा है, लिहाजा अपनी रचनाओंपर क्रमशः उनका विश्वास और ममत्व बढ़ने लगा।

अन्तमें एक दिन उन्होंने अपनी रचना, और-किसीसे नकल करवाकर, चारुके हाथमें दी; और बोले—"मेरे एक मित्रने हाल ही में लिखना शुरू किया है। मैं तो कुछ समझता नहीं, तुम एक बार पढ़के देखो तो सही, कैसा लिखा है!"

चारुके हाथमें कापी देकर भूपति बाहर चले गये। सरल-चित्त भूपतिके इस छलको चारु फौरन ताड़ गई।

चारुने उन्हें पढ़ा; और लिखनेकी शैली और विषय देखकर जरा हँस दी। हाय, अपने पतिकी भक्ति करनेके लिए वह इतनी तैयारियाँ कर रही है, फिर क्यों वे इतना लड़कपन करके उसके पूजाके अर्घ्यको बखेर देते हैं? चारुके मुंहसे वाहवाही सुननेके लिए क्यों इतनी कोशिश करते हैं? वे अगर कुछ भी न करते, चारुके मनको अपनी तरफ आकर्षित करनेके लिए अगर वे सर्वदा प्रयास न करते रहते, तो पतिकी पूजा करना चारुके लिए सहज-साध्य होता। चारुकी बड़ी इच्छा थी कि भूपति किसी भी अंशमें अपनेको उससे छोटा न करें।

चारुने कापी मोड़कर तकियाके नीचे रख ली; और उसपर कोहनी टेक कर दूर देखती हुई वह बहुत देर तक न-जाने क्या-क्या सोचती रही! अमल भी उसे अपनी नई रचना पढ़नेके लिए दिया करता था!

शामको उत्सुक होकर भूपति अपने कमरेके सामनेवाले बरामदेमें रखे-हुए फूलके टब देखने लगे; चारुसे कोई बात पूछनेकी उन्हें हिम्मत नहीं हुई। अन्तमें चारुने खुद ही कहा—"यह क्या तुम्हारे मित्रकी पहली रचना है?"

भूपतिने कहा—"हाँ।"

चारुने कहा—"अच्छा लिखा है! पहली रचना मालूम ही नहीं होती!"

भूपति अत्यन्त प्रसन्न होकर सोचने लगे, अब बेनामी रचनापर अपना नाम कैसे जारी किया जाय?

भूपतिकी कापियाँ बहुत जल्दी-जल्दी भरने लगीं। और नाम प्रकट होनेमें भी देर न लगी।

१७

विलायतसे चिट्ठी आनेका कौनसा दिन है, इस बातका चारु हमेशा ध्यान रखती। पहले अदनसे भूपतिके नाम एक चिट्ठी आई। उसमें अमलने भाभीको प्रणाम लिखा। स्विजसे भी अमलकी चिट्ठी आई, उसमें भी उसने

भाभीको प्रणाम लिखा। माल्टासे जो चिट्ठी आई उसमें भी भाभीके लिए प्रणाम लिखा आया।

परन्तु चारुके नाम अमलकी एक भी चिट्ठी नही आई। आखिर चारुने भूपतिसे सब चिट्ठियाँ लेकर उन्हें बार-बार उलट-पुलटकर पढ़ देखा। प्रणामके सिवा उनमें और-कहीं भी कोई आभास तक उसके लिए नही था।

इधर कुछ दिनोंसे चारुने जिस शान्त विषादके चँदोएके नीचे आश्रय लिया था, अमलकी उपेक्षासे वह बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया। उसके हृदयके भीतर फिर एक तरहका घात-प्रतिघात शुरू हो गया। और उसकी गार्हस्थिक कर्तव्य-स्थितिमें फिर भूकम्पकी-सी हलचल जारी हो गई।

भूपतिने फिर एक दिन आधी रातको उठकर देखा कि चारु बिस्तरपर नहीं है! इधर-उधर देखनेपर मालूम हुआ कि वह दक्षिणकी खुली खिड़कीके पास बैठी है। भूपतिको देखते ही चारु चटसे उठकर कहने लगी—"आज बड़ी गरम है, इसीसे जरा हवामें आ बैठी हूं।"

भूपति उद्विग्न हो उठे; और उन्होंने पलंगके ऊपर पंखा खिंचवानेका इन्तजाम करा दिया; और साथ ही चारुके स्वास्थ्य बिगड़नेकी आशङ्कासे हमेशा उसपर दृष्टि रखने लगे।

चारु हँसकर कहा करती, "मै बड़े मजेमें हूं, क्यों तुम झूठमूठको फिकर किया करते हो!" इतनी-सी हँसी खिलानेके लिए चारुको अपने हृदयकी सारी शक्ति लगा देनी पड़ती।

अमल विलायत पहुंच गया। चारुने सोचा था कि रास्तेमें उसके लिए अलग चिट्ठी लिखनेका शायद काफी मौका नहीं मिला होगा; विलायत पहुंचकर वह उसे लम्बी चिट्ठी देगा। अमल तो पहुँच गया, पर लम्बी चिट्ठी नहीं आई।

प्रत्येक विलायती डाक आनेके दिन चारु अपने समस्त काम-काज और बातचीतके भीतर-ही-भीतर फड़फड़ाती रहती। कहीं भूपति यह न कह दें कि तुम्हारे नामकी कोई चिट्ठी नही, इस आशंकासे भूपतिसे चिट्ठीके बारेमें कुछ पूछनेकी भी उसे हिम्मत नहीं पड़ती।

एक दिन, चारुके मनकी ऐसी हालतमें, विलायती डाक आनेके दिन, भूपति धीरे-धीरे भीतर आये ; और मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोले—"एक चीज लाया हूं, देखोगी ?"

चारु चौंक पड़ी ; और अत्यन्त व्यस्तताके साथ बोली—"कहाँ है ?"

भूपति मजाक करते रहे ; और दिखाना नहीं चाहा।

चारुने अधीर होकर भूपतिके दुपट्टेके भीतरसे वांछित वस्तु छीन लेनेकी कोशिश की। वह मन-ही-मन सोचने लगी, 'सवेरेसे ही मेरा मन बोल रहा है कि आज मेरी चिट्ठी आयेगी ही, सो क्या कभी व्यर्थ हो सकता है !'

भूपतिको इस मजाकमें बड़ा आनन्द आया ; वे उसे चालू रखनेके लिए पलंगके चारों तरफ घूमने लगे और चारु उनका पीछा करने लगी।

आखिर चारु नाराज होकर पलंगपर बैठ गई ; और उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

चारुके इस जबरदस्त आग्रहसे भूपति बहुत ही खुश हुए ; और अन्तमें दुपट्टेके भीतरसे अपनी रचनाकी कापी निकालकर चटसे चारुकी गोदमें रखकर बोले—"गुस्सा मत होओ, यह लो !"

१८

यद्यपि अमलने भूपतिको पहली चिट्ठीमें लिख दिया था कि पढ़ने-लिखनेमें लगे रहनेसे बहुत दिनों तक उसे चिट्ठी लिखनेका समय नहीं मिलेगा, किन्तु फिर भी दूसरी डाकसे उसकी चिट्ठी न आनेसे सारी घर-गृहस्थी चारुके लिए कंटक-शय्या हो उठी।

शामके बाद बातों-ही-बातोंमें चारुने बहुत ही उदास होकर शान्तस्वरमें अपने पतिसे कहा—"विलायतको एक तार देकर खबर मँगा लो न कि अमल कैसे है !"

भूपतिने कहा—"दो हफ्ते पहले उसकी चिट्ठी आ चुकी है कि अब वह पढ़ने-लिखनेमें व्यस्त रहेगा।"

चारु—"अच्छा, तो जाने दो। मैंने सोचा था कि आखिर परदेश है, शायद बीमार-ईमार पड़ गये हों! कोई ठीक थोड़े ही है!"

भूपति—"सो बात नहीं, बीमार पड़ता तो खबर भिजवा देता। तार भेजनेमें खरचा भी तो कम नहीं!"

चारु—"खरचा बहुत ज्यादा लगता है क्या? मैं समझती थी कि ज्यादासे ज्यादा एक या दो रुपया लगता होगा।"

भूपति—"अरे, नहीं, करीब-करीब सौ रुपयेका धक्का समझो!"

चारु—"तब तो मुश्किल ही है।"

दो दिन बाद चारुने भूपतिसे कहा—"मेरी बहन अभी चुंचड़ामें है, तुम वहाँ जाकर उसकी खबर-सुध ले आओ तो बहुत अच्छा हो।"

भूपति—"क्यों, वे बीमार हैं क्या?"

चारु—"नहीं, बीमार तो नहीं है। तुम तो जानते हो, तुम्हारे जानेसे उनलोगोंको कितनी खुशी होती है!"

भूपति चारुके अनुरोधसे घोड़ा-गाड़ीपर सवार होकर हावड़ा स्टेशन चल दिये। रास्तेमें बैलगाड़ियोंकी कतार लगी हुई थी, जिससे उनकी गाड़ी बहुत देर तक रुकी रही।

इतनेमें, एक परिचित टेलिग्राफ-पियोन उधरसे जा रहा था, उसने भूपतिको देखकर उनके नामका एक टेलिग्राफ उनके हाथमें दिया। विलायती टेलिग्राफ देखकर भूपति एकाएक डर गये। सोचा, अमल शायद बीमार पड़ गया। डरते-डरते उन्होंने तार खोलकर देखा, उसमें लिखा था—"मैं सकुशल हूं।"

इसके क्या मानी? उलट-पुलटके देखा तो मालूम हुआ, वह प्री-पेड टेलिग्रामका जवाब है!

हवड़ा जाना नहीं हुआ। गाड़ी वापस लौटाकर भूपतिने घर आकर स्त्रीके हाथमें तार दे दिया। भूपतिके हाथमें तार देखते ही चारुका चेहरा सफेद-फक पड़ गया।

भूपतिने कहा—"इसके मानी कुछ समझमें नहीं आये!"

अनुसन्धान करनेके बाद भूपतिको उसके मानी समझमें आ गये। चारुने अपना एक गहना गिरवी रखकर उन रुपयोंसे जवाबी-तार भेजा था।

भूपति सोचने लगे, 'इतना करनेकी कोई जरूरत ही नहीं थी। मुझसे जरा ज्यादा अनुरोध करती, तो मैं ही तार भेज देता। नौकरके हाथ इस तरह छिपाकर बाजारमें गहना गिरवी रखने भेजना, – यह तो कोई अच्छी बात नहीं!'

रह-रहकर भूपतिके मनमें सिर्फ एक ही प्रश्न उठने लगा, 'चारुने क्यों इतनी ज्यादती की?' एक अस्पष्ट सन्देह अज्ञात-रूपसे उनके हृदयमें चुभने लगा। उस सन्देहको भूपतिने प्रत्यक्षरूपसे देखना नहीं चाहा, बल्कि भूले रहनेकी कोशिश की; पर वेदनाने किसी भी तरह उनका पीछा नहीं छोड़ा।

१६

अमलकी तबीयत अच्छी है, फिर भी वह चिट्ठी नहीं लिखता! आखिर ऐसी कठोरताके साथ सम्बन्ध-विच्छेद क्यों हुआ? चारुका जी चाहता है कि वह खुद जाकर एक बार रूबरू इस प्रश्नका उत्तर ले आवे। किन्तु बीचमें समुद्र है; पार होनेका कोई रास्ता नहीं। निष्ठुर विच्छेद है, निरुपाय विच्छेद है, सब प्रश्न और समस्त प्रतिकारोंके बाहरका है यह विच्छेद!

चारु अपनेको सम्हालकर खड़ी न रख सकी। घरका काम-काज पड़ा रहने लगा, सभी कामोंमें गलती होने लगी, नौकर-चाकर चोरी करने लगे; उसके दीन-भावको देखकर सब कानाफूसी करने लगे; और इतना सब-कुछ होते हुए भी उसे होश नहीं आया!

होते-होते ऐसा हो गया कि अचानक वह चौंक-चौंक उठती, बात करते-करते जरा रो आनेके लिए उसे उठकर एकान्तमें जाना पड़ता, यहाँ तक कि अमलका जिक्र सुनते ही उसका चेहरा फक पड़ जाता।

आखिर, भूपतिसे यह सब-कुछ छिपा न रहा। और जो बात उन्होंने एक क्षणके लिए भी कभी नहीं सोची थी वह भी सोचनी पड़ी। संसार उनके लिए बिलकुल शुष्क और जीर्ण वृद्ध-सा हो गया।

बीचमें जो कुछ दिनके लिए आनन्दके उन्मेषमें भूपति अन्धे हो गये थे, उन दिनोंकी स्मृति उन्हें लज्जित करने लगी। जो अनभिज्ञ बानर जवाहर नहीं पहचानता उसे झूठा पत्थर देकर क्या इसी तरह ठगना चाहिए ?'

चारुकी जिन बातोंसे, जिस प्रेम और व्यवहारसे, भूपति फूले-फूले फिरते थे, वे सब बातें याद आ-आकर उन्हें "मूढ़, मूढ़, मूढ़" कह-कहके बेंत मारने लगीं।

अन्तमें, जब उन्हें अपनी बहुत परिश्रमसे लिखी-हुई रचनाओंका खयाल आया, तो उन्होंने धरणीको विदीर्ण होनेके लिए कहा। अंकुश-ताड़ित हस्तीकी तरह वे जल्दी-जल्दी चारुके पास पहुँचे ; और बोले—"मेरी वे कापियाँ कहाँ हैं ?"

चारुने कहा—"मेरे पास रखा हैं।"

भूपतिने कहा—"ला दो उन्हें।"

चारु उस समय भूपतिके लिए मटरकी कचौड़ियाँ बना रही थी। बोली—"अभी तुरत चाहिए ?"

भूपतिने कहा—"हाँ, अभी तुरत।"

चारु कड़ाही उतारकर आलमारीसे उनकी कापियाँ और कागज वगैरह सब निकाल लाई।

भूपतिने अधीरताके साथ उसके हाथसे कापियाँ छीनकर चूल्हेमें डाल दीं।

चारु जल्दीसे उन्हें निकालनेकी कोशिश करती हुई बोली—"यह तुमने क्या किया !"

भूपतिने उसका हाथ पकड़कर गरजते हुए कहा—"रहने दो !"

चारु आश्चर्य-चकित होकर खड़ी रही। भूपतिकी तमाम रचनाएँ देखते-देखते जलकर भस्म हो गईं।

चारु सब समझ गई। उसने एक गहरी साँस ली ; और कचौड़ी सेंकना छोड़कर धीरे-धीरे अन्यत्र चली गई।

चारुके सामने अपनी रचनाएँ नष्ट कर डालनेका भूपतिका इरादा नहीं था। किन्तु, ठीक सामने ही आग जल रही थी, उसे देखकर कैसा-तो उनके

सरपर खून सवार हो गया ! भूपति अपनेको सम्हाल न सके ; और प्रवंचित नासमझके सम्पूर्ण उद्यमको उन्होंने प्रवंचना-कारिणीके सामने ही आगमें डाल दिया।

जब सब जलकर भस्म हो गया तब भूपतिकी आकस्मिक उग्रता कुछ शान्त हुई ; और तब उन्हें खयाल आया कि चारु अपने अपराधोंका बोझ लेकर कैसे गभीर विषादसे चुपचाप सिर झुकाये चली गई ! और फिर जो सामने देखा, तो वे सोचने लगे, 'मुझे मटरकी कचौड़ियाँ बहुत अच्छी लगती हैं, इसीसे चारु अपने हाथसे इतने जतनसे कचौड़ियाँ बना रही थी।'

भूपति बरामदेमें जाकर रेलिंगपर झुककर खड़े हो गये। मन-ही-मन सोचने लगे, 'मेरे लिए चारुकी ये जो अश्रान्त चेष्टाएँ हैं, ये जो वंचनाएँ हैं, इससे बढ़कर करुणाजनक बात संसारमें और क्या होगी ? ये सब वंचनाएँ तो सिर्फ छलना-कारिणीकी हेय छलना-मात्र नहीं ! हाय, इन छलनाओंके लिए अभागिनीको अपने विदीर्ण हृदयकी क्षत-यन्त्रणाको चौगुना बढ़ाकर, इतने दिनोंसे, क्षण-क्षणमें अपने हृत्पिण्डसे कितना खून निचोड़कर निकालना पड़ा होगा !' फिर वे मन-ही-मन कहने लगे, "हाय री अबला, हाय री दुःखिनी नारी ! इतना करनेकी क्या जरूरत थी ? मुझे इन सब बातोंकी कतई जरूरत नहीं थी। इतने दिनोंसे प्रेम न मिलनेपर भी, 'नहीं मिला' कहकर मैंने कभी कोई शिकायत नहीं की। मेरे दिन तो सिर्फ लेख लिखने और प्रूफ देखनेमें ही बीत रहे थे। फिर मेरे लिए इतनी कोशिश करनेकी क्या जरूरत ही थी !"

अन्तमें भूपतिने अपने जीवनको चारुके जीवनसे दूर हटाकर – डाक्टर जैसे असाध्य-रोग-ग्रस्त रोगीको देखता है वैसे – निःसम्पर्क व्यक्तिकी तरह चारुको दूरसे देखने लगे। देखने लगे, उस क्षीणशक्ति नारीका हृदय कैसे प्रबल-संसारके द्वारा चारों तरफसे आक्रान्त हो रहा है ! ऐसा कोई आदमी नहीं जिसके आगे वह अपनी सब बातें कह सके ; ऐसी कोई बात नहीं जो शब्दोंमें कही जा सके ; ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वह सम्पूर्ण हृदय खोलकर हाहाकार करके अपना हृदय हलका कर सके ; फिर भी उसे इस प्रतिदिन

पुंजीभूत होनेवाले अप्रकाश्य अपरिहार्य अप्रतिविधेय दुःख-भारको वहन करते हुए, सहज-स्वाभाविक आदमियोंके समान ही, अपनी स्वस्थ-चित्त पड़ोसिनोंकी तरह ही, अपनी घर-गृहस्थीका काम-धन्धा करना पड़ रहा है !

भूपतिने अपने सोनेके कमरेमें जाकर देखा, जंगलेकी छड़ पकड़े चारु सूखी आँखोंसे एकटक बाहरकी ओर देख रही है। धीरेसे वे उसके पीछे जाकर खड़े हो गये, कुछ बोले नहीं, सिर्फ चारुके माथेपर हाथ रखकर रह गये।

२०

एक दिन भूपति अपनी बैठकमें बैठे कुछ काम कर रहे थे। इतनेमें उनकी मित्र-मण्डली आ पहुँची। मित्रोंने पूछा—"बात क्या है, भई ! आज इतने व्यस्त कैसे ?"

भूपतिने कहा—"अखबार—"

एक मित्र बीच ही में बोल उठे—"फिर अखबार ! अपना घर-द्वार सब-कुछ अखबारकी रद्दीमें मोड़कर गंगामें बहा देनेका ही निश्चय कर लिया है क्या ?"

भूपति—"नहीं नहीं, मैं खुद नहीं निकाल रहा।"

मित्र—"तो ?"

भूपति—"मैसूरसे एक नया अखबार निकलनेवाला है : मुझे उसका सम्पादक बनाया गया है।"

मित्र—"घर-द्वार सब छोड़-छाड़कर एकदम मैसूर चले जाओगे ! चारुलता भी साथ जायेंगी क्या ?"

भूपति—"नहीं। मामा वगैरह सब यहीं आकर रहेंगे।"

मित्र—"आखिर सम्पादकीका नशा तुम्हारा छूटा ही नहीं किसी कदर ! आश्चर्य है !"

भूपति—"आखिर आदमी ठहरा, भाई, आदमीके लिए एक-न-एक नशा चाहिए ही। बिना नशेके वह जी कैसे सकता है !"

२१

भूपति जब मैसूरके लिए रवाना होने लगे तो चारुने उनसे पूछा—"कितने दिनमें आओगे ?"

भूपतिने अपनेको सम्हाला ; और चारुकी तरफ बगैर देखे ही कहा—"जब तुम्हारा जी न लगे, लिख देना, मैं चला आऊँगा।"

इतना कहकर भूपति दरवाजेके पास पहुंचे ही थे कि चारु सहसा दौड़ी गई और उनका रास्ता रोककर, हाथ पकड़के, बोली—"मुझे भी साथ लेते चलो। यहाँ मुझे अकेली न छोड़ जाओ !"

भूपति ठिठककर खड़े हो गये ; और कुछ देर तक स्तंब्ध होकर चारुके मुंहकी तरफ एकटक देखते रहे। मुट्ठी ढीली हो जानेसे चारुके हाथसे भूपतिका हाथ छूट गया। भूपति चारुके पाससे हटकर बरामदेमें जा खड़े हुए।

भूपतिको समझनेमें देर न लगी कि अमलके विच्छेदकी स्मृति जिस घरको चारों तरफसे घेरे-हुए ग्रस रही है, उस घरको चारु दावानल-ग्रस्त वनकी हरिणीकी तरह छोड़कर भागना चाहती है ! और मन-ही-मन कहने लगे, 'पर मेरे विषयमें उसने एक बार भी नहीं सोचा कि मैं कहाँ भागकर जाऊँ ? जो स्त्री अपने हृदयमें निरन्तर दूसरेका ध्यान करती है, परदेश जाकर भी उसे भूलनेकी मुझे छुट्टी नहीं मिलेगी ! निर्जन बन्धु-हीन प्रवासमें भी प्रतिदिन मुझे उसका साथ देना पड़ेगा ! दिन-भर परिश्रम करके शामको जब घर लौटूंगा, तब उस घरमें निस्तब्ध शोकाकुल नारीके साथ मेरी रातें कैसी भयानक हो उठेंगी ! जिसके हृदयके भीतर मृतकका भार है उस हृदयको अपने पास रखना ! यह मैं कब तक कर सकूँगा ? और भी कितने वर्ष रोज-रोज मुझे इस तरह जीना पड़ेगा ? जो आश्रय टूट-फूटकर चकनाचूर हो गया है, उसकी टूटी-फूटी ईंट-लकड़ियोंको फेंककर भी कहीं नहीं जा सकता मैं ! उसके सम्पूर्ण असह्य बोझको अपने कँधेपर लादकर ले जाना पड़ेगा मुझे !

भूपतिने चारुसे आकर कहा—"नहीं, सो मुझसे नहीं हो सकता।"

एक ही क्षणमें चारुका सारा खून ठंडा पड़ गया; और चेहरा उसका सूखकर कागज-सा सफेद हो गया। चारु पलंगकी पाटी पकड़कर उसके सहारे किसी कदर खड़ी रही।

भूपतिने उसी वक्त कहा—"चलो, चारु, मेरे साथ ही चलो।"

चारुने कहा—"नहीं, अब रहने दो!"

अकारादिक्रमिक सूची

[भाग १ से १४ तक]

चौदह भागोंकी अलग-अलग सूची

पहला भाग

१ दो बहन (उपन्यास); २ कंकाल, ३ घाटकी बात, ४ बदलीका दिन, ५ सौगात, ६ स्वर्णमृग (कहानियाँ); और ७ हिन्दू-मुसलमान (निबन्ध)

दूसरा भाग

८ एक चितवन, ९ एक बरसाती कहानी, १० एक रात, ११ 'चन्ना फूः', १२ जिन्दा और मुरदा, १३ दुलहिन, १४ दृष्टि-दान, १५ प्यासा पत्थर, १६ प्राण-मन, और १७ मुक्तिका उपाय (कहानियाँ)

तीसरा भाग

१८ एक छोटी-सी पुरानी कहानी, १९ कहानी, २० त्याग, २१ दालिया, २२ दुराशा, २३ देन-लेन, २४ निशीथमें, २५ मणि-हीन, २६ सड़ककी बात, २७ सम्पादक, और २८ सुभा (कहानियाँ)

चौथा भाग

२९ 'फुलवाड़ी' ("मालंच" उपन्यास); ३० दीवार, ३१ बाकायदा उपन्यास, ३२ सम्पत्ति-समर्पण (कहानियाँ); और ३३ ढक्कन (निबन्ध)

पाँचवाँ भाग

३४ अधिनेता, ३५ जय-पराजय, ३६ ताराचन्दकी करतूत, ३७ पोस्ट मास्टर, ३८ फरक, ३९ रामलालकी बेवकूफी, ४० संस्कार, ४१ सजा, ४२ समाप्ति (कहानियाँ); ४३ जन्म-दिन, ४४ पापके खिलाफ, ४५ महात्मा का प्रण्यव्रत, ४६ महात्मा गांधी, और ४७ व्रत-उद्यापन (निबन्ध)

छठा भाग

४८ अनधिकार-प्रवेश, ४९ कहानीकार, ५० काबुलवाला, ५१ छुट्टी, ५२ जासूस, ५३ जीजी, ५४ नीड़, ५५ भाई-भाई, ५६ महामाया, ५७ शुभदृष्टि (कहानियाँ); ५८ 'मा मा हिंसीः' ५९ राष्ट्रकी पहली पूंजी (निबन्ध)

सातवाँ भाग

६० असम्भव बात, ६१ उद्धार, ६२ उलट-फेर, ६३ बदला, ६४ बेटा, ६५ रासमणिका लड़का, ६६ समाधान (कहानियाँ) ; और ६७ तपोवन (निबन्ध)

आठवाँ भाग

६८ अध्यापक, ६६ अपराजिता, ७० कर्मफल (कहानियाँ) ; ७१ अभिसार, ७२ अरूप-रतन, ७३ जनगण-मन-अधिनायक, ७४ दुःसमय, ७५ निर्झरका स्वप्न-भङ्ग, ७६ सूरदासकी प्रार्थना, ७७ होली (काव्य और कविताएँ) ; और ७८ शिक्षाका विकीरण (निबन्ध)

नौवाँ-दसवाँ भाग

७६ 'उलझन' ("नौकाडूबी" उपन्यास)

ग्यारहवाँ भाग

८० 'डाकघर', ८१ 'नन्दिनी' (नाटक) ; ८२ अभिलाष, ८३ 'कच और देवयानी', ८४ न्याय-दण्ड, और ८५ मुक्त चैतन्य (काव्य और कविताएँ)

बारहवाँ भाग

८६ 'आखिरी कविता' (उपन्यास)

तेरहवाँ भाग

८७ कालकी यात्रा ('रथकी रस्सी' और 'कविकी दीक्षा') ८८ 'बाँसुरी' (नाटक) ; ८६ 'कर्ण-कुन्त-संवाद', ६० देवताका ग्रास (काव्य और कविताएँ) ; ६१ पुस्तकालयोंका मुख्य कर्तव्य, ६२ मुक्तिकी दीक्षा, और ६३ साहित्य-धर्म (निबन्ध)

चौदहवाँ भाग

६४ भाभी (उपन्यास : बड़ी कहानी) ; ६५ विसर्जन (नाटक) ; और ६६ 'कणिका' (छोटी कविताएँ)